Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

3/37

1.3

द्वैताद्वैत सिद्धान्त

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

LIBRARY
No.....
Shri Shri Ma Anandamayee Ashram
BANARAS
3/37

3/37

ॐ श्री गुरवे नमः ।

ॐ श्री निम्बार्काचार्य्याय नमः ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

द्वैताद्वैत सिद्धान्त

(१)

श्री श्री भगवत्कृपा से आज १७ माघ संवत् १९८९ (वंगाब्द १३३९ सन्) में वङ्गभूमि में श्रीनिम्बार्क-आश्रम स्थापित हुआ। साधारण जनों की अवगति के कारण इसके मुख्य उद्देश्य का कुछ वर्णन करने में प्रवृत्त हो रहा हूँ। संक्षेपतः, श्रीनिम्बार्क ऋषि द्वारा प्रचारित, पूर्वाचार्य्य श्रीहंसावतार और भगवान् सनत्कुमारादि द्वारा उपदिष्ट, सार्वजनिक धर्म्म इस देश में इस आश्रम से प्रचारित होकर इस देश के निवासियों की धर्म्म-पिपासा की निवृत्ति करे, यही इस आश्रम और मन्दिर की स्थापना का उद्देश्य है।

परमात्मा—परब्रह्म चिदानन्द सद्वस्तु है, एवं जीव और जगत् उसी के अङ्गीभूत अंशमात्र हैं; सुतरां सब जीवों में भगवत्-बुद्धि को स्थापित कर द्वेष, हिंसा, मिथ्या, कलह आदि को त्यागकर, अनहंबुद्धि तथा निर्मलचित्त हो, साधक प्रेमपूर्ण हृदय

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

से श्रीभगवत् के स्वरूप-सागर में नदीवत् प्रविष्ट होकर अच्युतानन्द की प्राप्ति के योग्य हो सके, यही श्रीनिम्बार्क-प्रचारित सनातन धर्म है। श्रीमन्निम्बार्क स्वामी के द्वारा उपदिष्ट सिद्धान्त का नाम द्वैताद्वैत (अथवा भेदाभेद) सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अङ्गसमूह का पृथक्-पृथक् रूप से प्रमाणों के साथ संक्षेपतः नीचे वर्णन किया जाता है :—

(१) परमात्मा ब्रह्म भगवान् चिच्छक्तियुक्त, आनन्दमय, अनादि, अक्षर, सद्वस्तु है। इस चित्शक्ति को ही ईक्षणशक्ति, ज्ञानशक्ति, अनुभवशक्ति इत्यादि नामों से वर्णित करते हैं।

(२) परमात्मा ब्रह्म अद्वितीय, अनन्त, भूमा है (उसके अतिरिक्त द्वितीय वस्तु कुछ नहीं है)।

(३) ये दृश्यस्थानीय अनन्त जगत् तथा अनन्त जीव ब्रह्म से अभिन्न—उसी के अंश-स्वरूप—हैं। दृश्यमान जगत् का एकमात्र उपादान ब्रह्म का स्वरूपगत आनन्द है; एवं ब्रह्म की जो ईक्षण (चित्) शक्ति है वही जगत् का निमित्त कारण है। जीव भगवान् की चित्-शक्ति का एक विशेष प्रकार का भेद है, यह आगे और भी विशेष रूप से व्याख्यात होगा।

(४) आनन्दरूपी ब्रह्म की माया नाम्नी एक शक्ति वर्त्तमान है; वह उसकी स्वरूपगत शक्ति है, अतः वह अनादि तथा नित्या है। यह मायाशक्ति ही प्रकृति के नाम से आख्यात है। इसका स्वरूप यह है कि, ब्रह्म के एक अद्वैत अखण्ड, तथा सदैव पूर्णस्वभाव होने पर भी, यह शक्ति

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्वरूपस्थ आनन्द को अनन्त विशेष-विशेष रूपों में प्रतिभात करती है अर्थात् उसकी ईक्षण (चित्) शक्ति के विषयीभूत करती है। भाषान्तर में इस मायाशक्ति का इस भाँति वर्णन कर सकते हैं कि, ब्रह्म के स्वरूपगत आनन्द में ऐसी योग्यता या शक्ति है, कि स्वयं अविकृत रहकर भी, वह अनन्त रूपों में प्रकाशित हो सकता है (अर्थात् वह अपनी चित्शक्ति के द्वारा अनन्त रूपों में अनुभूत—दृष्ट तथा भुक्त हो सकता है)। यह माया उसकी आत्मभूता शक्ति है।

(५) यह जो अनन्तरूपसमूह ब्रह्म में प्रकाशित होता है, उसी का नाम जगत् है; उसकी चित्शक्ति द्वारा यह जगत् उसका विषयीभूत होता है। समग्र जगत् का एक साथ सम्यक् अनुभव (दर्शन) करनेवाला रूप में उसकी ईश्वर संज्ञा होती है; अतः ईश्वर नित्यसर्वज्ञ है। एवञ्च विशेष-विशेष रूपों से क्रमशः दर्शनकर्त्ता रूप में उसकी जीव संज्ञा होती है। अतएव जीव विशेषज्ञ हैं, ईश्वर की भाँति एक ही समय समग्र द्रष्टा नहीं हैं; ईश्वरत्व और जीवत्व दोनों ब्रह्म की अङ्गीभूता चित्शक्ति ही के प्रकार-भेद मात्र हैं; दोनों नित्य हैं। भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान में प्रकाशित सभी रूपों के सर्वज्ञ ईश्वर के ज्ञान में नित्य प्रतिष्ठित रहने के कारण जगत् भी अनादि एवं इस अर्थ में नित्य है। नित्य-सर्वज्ञता के कारण ईश्वर कालातीत है; उसके ज्ञान का कोई पारम्पर्य्य (क्रमभेद) नहीं है। परन्तु स्वरूपतः विशेषज्ञ मात्र होने के कारण, जीव

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उन्हीं रूपों के दर्शन क्रमशः करते हैं जो ईश्वरज्ञान में नित्य प्रतिष्ठित हैं। अतएव जीवों के ज्ञान में जागतिक वस्तु-समूह एक के पश्चात् और ऐसे क्रम से प्रकाशित होते हैं; एवं वे उत्पत्ति, स्थिति तथा लयशील रूपों में सदैव वर्तमान रहते हैं। अतः जीवों के ज्ञान में जगत् अनित्य—सदा परिवर्त्तनशील है; परन्तु सर्वज्ञ ईश्वर के ज्ञान में जो नित्य स्थित है, उसको अतिक्रम करके विशेषज्ञ जीवों के ज्ञान में कुछ भी प्रकाशित नहीं हो सकता; सुतरां जीव नित्य ही ईश्वराधीन हैं, ईश्वर के द्वारा जीवों के सर्वविध दर्शनकार्य्य नित्य नियमित होते हैं।

(६) अतएव ब्रह्म के स्वरूप को वर्णन करने पर उसको चतुष्पाद-विशिष्ट कहकर वर्णित करना चाहिए।

(क) प्रथम दृश्यस्थानीय अनन्त जगत्पाद।

(ख) इस जगत् के पदार्थ-समूह का विशेष-विशेष भाव से द्रष्टारूप द्वितीय जीवपाद।

(ग) अनन्त जागतिक पदार्थों के एक संग नित्यद्रष्टारूप से तृतीय ईश्वरपाद।

(घ) इन सब रूपों से वर्जित, नित्य, एकरस, आनन्द-मात्र के अनुभवकर्त्तारूप से चतुर्थपाद, जिसको एकान्त अक्षर-पाद के नाम से श्रुतियों ने वर्णित किया है।

वास्तव में सर्वज्ञ ईश्वर और विशेषज्ञ जीव दोनों अक्षर हैं, क्योंकि दोनों चिद्रूपी द्रष्टा मात्र हैं और इस चिद्रूप का कोई भी परिवर्त्तन नहीं होता है। जीवों के दृश्यस्थानीय प्रका-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शित सभी रूपों का परिवर्त्तन जीवों के ज्ञान में नित्य घटित हुआ करता है और वे परिवर्त्तनशील कहकर प्रतिभात होते हैं। (आगे दृष्टान्त के द्वारा यह विशेष रूप से व्याख्यात होगा।) विशेष द्रष्टा जीवों की अथवा सम्यक् द्रष्टा ईश्वर की स्वीय चिद्रूपता में कोई परिवर्त्तन कदापि घटित नहीं होता है। अतः दोनों क्षय तथा परिवर्त्तन-रहित हैं। वे सदैव द्रष्टामात्र रहते हैं। परन्तु जागतिक रूपों के अनंतत्व के कारण उन सब के द्रष्टा जीव भी अनन्त हैं। परन्तु सर्वव्यापक होने के कारण ईश्वर-संज्ञक चित् स्वरूपतः विभुस्वभाव है। जीव स्वरूपतः अणुस्वभाव हैं; क्योंकि क्षुद्र से क्षुद्र विशेष रूपों के अधिष्ठातारूप में वर्तमान रहकर वे उन रूपों का अनुभव करते हैं। परन्तु स्वरूपतः अणुपरिमाण होने पर भी एक क्षुद्र दीपशिखा जैसे बहुदूरव्यापी स्थान को अपनी प्रकाशकारिणी शक्ति का विषय करती है, जीव भी वैसे ही बहुदूरव्यापी पदार्थों को अपने दर्शन का विषय कर सकते हैं। परन्तु सर्वज्ञ ईश्वर के सदृश अनन्त ब्रह्माण्ड की एककालीन धारणा करने में जीव समर्थ नहीं होते हैं। चतुर्थ अक्षरब्रह्म का अनुभवगम्य जो आनन्द है वह सदैव एकरस रहता है; विशेष-विशेष रूपों का प्रकाश उसमें नहीं है। सुतरां इस चतुर्थ पाद को विशेषित करके इसको अक्षर-पाद के नाम से श्रुतियों ने विशिष्ट रूप से वर्णित किया है।

(७) इन सब उक्तियों को एक सङ्ग मिलाने से उसका फल यह होता है कि जगत् ब्रह्म का अंशमात्र है, जीव-ज्ञान

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

में वह क्षर-स्वभाव तथा अनन्तरूपविशिष्ट है; जीव भी ब्रह्म का अंशमात्र अक्षर-स्वभाव एवं संख्या में अनन्त तथा स्वरूपतः अणुपरिमाण है। जीव और जगत् दोनों ईश्वराधीन हैं; ईश्वर नित्य-सर्वज्ञ, अनन्त, अद्वितीय तथा अक्षरस्वभाव है, एवं ईश्वर-ज्ञान में जगत् नित्य वर्तमान है। वही जगत् का धारक तथा पोषक है, और जीवों का नियन्ता भी वही है। स्वरूपतः द्रष्टामात्र होने के कारण वह मूर्त्तिमान् जगत् के परे है—इसका आश्रयस्थानीयमात्र है, स्वयं अमूर्त्त है। निरवच्छिन्न अक्षररूप में ब्रह्म सर्वातीत, आनन्दमय, चिद्घन, सम्पूर्ण अरूपी है; किसी विशेष रूप का ज्ञान उसमें नहीं है; उसी को परब्रह्म कहते हैं; परन्तु ईश्वर, जीव और जगत् उसी में स्थित हैं—उसी के विशेष-विशेष रूप हैं।

विष्णु-पुराण के षष्ठांश के ७म अध्याय में ब्रह्म का चतुर्विधत्व किञ्चित् विभिन्न भाव से निम्नलिखित रूप में वर्णित हुआ है :—

आश्रयश्चेतसो ब्रह्म द्विधा तच्च स्वभावतः।
भूप मूर्तममूर्तञ्च परञ्चापरमेव च* ॥ ४७ ॥

---

* इस श्लोक की श्रीधरस्वामी-कृत टीका इस प्रकार है, यथा—चेतस आश्रयो ब्रह्मैव; तच्च मन्दमध्यमोत्तमाधिकारिणां यथायोगं मूर्तामूर्तपरापरभेदेन चतुर्द्धावस्थितं.....। मूर्त्तं मूर्त्तिमत्। अमूर्त्तं तद्रहितम्। तत्पुनः प्रत्येकं परञ्चापरञ्चेति द्विधा। तत्र परममूर्त्तं

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अमूर्त्तं ब्रह्मणो रूपं यत् सदित्युच्यते बुधैः ।
समस्ताः शक्तयश्चैता नृप ! यत्र प्रतिष्ठिताः ॥ ६९॥
तद्विश्वरूपाख्यं वै रूपमन्यद्धरेर्महत् ।
समस्त शक्तिरूपाणि तत्करोति जनेश्वर ॥ ७० ॥
एतत्सर्वमिदं विश्वं जगदेतच्चराचरम् ।
परब्रह्मस्वरूपस्य विष्णोः शक्तिसमन्वितम् ॥६० ॥

× × ×

निर्गुणं ब्रह्म; अपरञ्चामूर्त्तं षड्गुणेश्वररूपम् । परं मूर्त्तं पद्मनाभादिलीलाविग्रहरूपम् । अपरं मूर्त्तं हिरण्यगर्भादिविश्वरूपम् ।

जगत् को दृश्यस्थानीय मात्र कहकर बोधगम्य कराने के लिए ही उसको जड़ (अचित् वस्तु) कहते हैं; परन्तु इसका कोई भी अंश एकदम चित्-शक्ति-विहीन नहीं है । प्रत्येक अंश में अनुप्रविष्ट भाव से स्थित रहने के कारण उस अनुप्रविष्ट चित् को पुरुष कहते हैं । दृश्यस्थानीय अंश को देह कहते हैं, और उसमें अधिष्ठित चित् को पुरुष कहते हैं । वास्तव में देह और पुरुष सदैव संयुक्त हैं । समग्र जगद्रूप देहविशिष्ट चित् को हिरण्यगर्भ के नाम से आख्यात करते हैं । वही ईश्वर का प्रकाशित मूर्त्त रूप है । साधारण जीवसमूह हिरण्यगर्भ-रूपी ईश्वर की देह के अङ्गीभूत विशेष-विशेष अंशों के अधिष्ठाता हैं । जैसे किसी एक मनुष्य की समग्र देह का अधिष्ठाता एक पुरुष है; परन्तु उसकी देह में अनन्त कोटि क्षुद्र जीव उस समग्र देह के विशेष-विशेष अङ्गों के अधिष्ठाता-रूप में वर्तमान हैं, वैसे ही हिरण्यगर्भ की भी विराट् देह के विशेष-विशेष अङ्गों के अधिष्ठाता-रूप में स्थित अनन्त जीव हैं । यही उक्त श्लोक की व्याख्या में श्रीधरस्वामीजी ने व्यक्त किया है ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एतान्यशेषरूपस्य तस्य रूपाणि पार्थिव ॥ ६७ ॥
यतस्तच्छक्तियोगेन व्याप्तानि नभसा यथा ।
द्वितीयं विष्णुसंज्ञस्य योगिध्येयं महामते ॥ ६८ ॥

अस्यार्थः—हे भूप ! (विष्णूपासक पुरुषों के) मन का आश्रय (ध्यातव्य) ब्रह्म है। उसके स्वरूपतः द्विविध रूप हैं; मूर्त्त तथा अमूर्त्त, जो पुनरपि पर और अपर के भेद से द्विविध है ॥ ४७ ॥

ज्ञानिगण जिसे ब्रह्म का सद्रूप कहकर वर्णित करते हैं, वह अमूर्त्त है। हे नृप ! जिसमें प्रकाशित सर्वप्रकार की शक्तियाँ प्रतिष्ठित हैं वही महत् विश्वरूप हरि का अन्य (मूर्त्त) रूप है; उन्हीं से समस्त शक्तिसम्पन्न (विशेष-विशेष) रूप प्रकाशित होते हैं ॥ ६९-७० ॥

समस्त विश्व चराचर समग्र जगत् परब्रह्म-स्वरूप विष्णु की शक्ति से समन्वित होकर प्रकाशित हुआ है ॥ ६० ॥

हे पार्थिव ! ये समस्त रूप (समस्त जीव-रूप) उन्हीं अनन्तरूपी विष्णु के रूप हैं। कारण, आकाश-द्वारा जिस प्रकार समग्र जगत् व्याप्त है उसी प्रकार विष्णु की शक्ति के द्वारा ये सब व्याप्त हैं। हे महामते ! (सर्वव्यापक) विष्णु की यही द्वितीय ध्येय मूर्त्ति है ॥ ६८ ॥

इन सबका फलितार्थ यह है कि ब्रह्म के चार प्रकार के रूप हैं :—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(क) अमूर्त्त "पर" रूप जो निर्गुण अक्षर के नाम से विख्यात सत्स्वरूप है।

(ख) अमूर्त्त "अपर" रूप जो सर्वज्ञ ईश्वर का रूप है, एवं सर्व प्रकार की शक्तियों का आश्रय-स्थान है।

(ग) समष्टिभाव से विश्वव्यापक (हिरण्यगर्भ) रूप जिससे साक्षात्सम्बन्ध में समस्त शक्तियाँ प्रकाशित होती हैं।

(घ) अनन्त विशेष-विशेष जीवरूप (४७संख्यक प्रभृति श्लोकों की श्रीधरस्वामी-कृत टीका देखनी चाहिए)।

एवञ्च ब्रह्म द्वैताद्वैत है, जीवों के साथ उसका सम्बन्ध भेदाभेद है—भेद में अभेद तथा अभेद में भेद।

(८) अब संक्षेपतः श्रुति के प्रमाण तथा अनुमान के आधार पर ये सब सिद्धान्त विशिष्ट रूप से व्याख्यात किये जाते हैं:—

(क) परमात्मा ब्रह्म आनन्दस्वरूप है, यह श्रुतियों ने स्पष्टभाव से कहा है; यथा: —

"भृगुर्वै वारुणिः। वरुणं पितरमुपससार अधीहि भगवो ब्रह्मेति। तस्मा एतत् प्रोवाच.....यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व। तद्ब्रह्मेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा.....आनन्दो ब्रह्मेति व्याजानात्। आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति।"

(तैत्तिरीय उपनिषद्, भृगुवल्ली)

LIBRARY
No.
CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनुवाद—वरुण-पुत्र भृगु ने अपने पिता के समीप उपस्थित होकर कहा—"हे भगवन् ! ब्रह्म क्या है, इसका उपदेश मुझे कीजिए। उन्होंने कहा..... जिससे भूतसमूह उत्पन्न हुए हैं, उपजात होने के पश्चात् जिससे जीवन-धारण करते हैं, मृत्यु के पश्चात् जिसको प्राप्त हो उसमें अनुप्रविष्ट (उससे मिलित) होते हैं, उसको जानने के लिए प्रयत्न करो। वही ब्रह्म है। तब भृगु तपस्या में प्रवृत्त हुए (ध्यान-निमग्न हुए)। तपस्या करके अन्त में उन्होंने अवगत किया कि आनन्द ही ब्रह्म है। आनन्द ही से यह भूतग्राम उत्पन्न होता है। आनन्द द्वारा ही (पुष्ट होकर) उपजात होने के पश्चात् जीवन धारण करता है, एवं आनन्द ही को प्राप्त कर उसमें अनुप्रविष्ट होता है।" (तैत्तिरीय उपनिषद्, भृगुवल्ली)

पुनः श्रुति कहती है—"रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति। को ह्येवान्यात् कः प्राण्यात्। यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्। एष ह्येवानन्दयति।" (तैत्तिरीय ब्रह्मानन्दवल्ली)।

अनुवाद—परमात्मा रसस्वरूप (आनन्द-स्वरूप) है। यह जीव उस रसस्वरूप को प्राप्त कर आनन्दमय होता है, (वास्तव में) यदि इस अनन्त जगत् में (अथवा अपने अन्तराकाश में) यह आनन्द वर्तमान न रहता, तो कौन ही जीवन धारण करता अथवा कुछ भी कर्म्मचेष्टा करता ? यही आनन्दरूपी ब्रह्म जीवों को आनन्दित करता है। इत्यादि।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(ख) ब्रह्म जो चिदात्मक (ज्ञानमय), अक्षर, अनन्त सद्वस्तु है, इस सम्बन्ध में बहु श्रुति-प्रमाण हैं। यथा :—सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। (तै०, ब्रह्मानन्दवल्ली)।

ब्रह्म सत्स्वरूप, ज्ञानस्वरूप एवं अनन्त है।

एतद्धेयवाक्षरं ब्रह्म एतदेवाक्षरं परम्।
एतद्धेयवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्॥ इत्यादि।
(कठ २य, वल्ली १६)

अस्यार्थः—यही ब्रह्म अक्षर है, यह परम अक्षर है, इस अक्षर को अवगत कर जीव जो कुछ चाहता है वह उसे प्राप्त होता है।

(ग) ब्रह्म आनन्दस्वरूप, आनन्दमय है, यह पूर्वोद्धृत श्रुतियों ने स्पष्ट रूप से वर्णन किया है। इन सब श्रुति-वाक्यों की कोई विरुद्ध व्याख्या नहीं है। परन्तु विचार करने से प्रतीत होता है कि यदि ब्रह्म अद्वितीय तथा भूमा (सर्वव्यापी) न होवे, तो वह यथार्थ आनन्दमय हो नहीं सकता; द्वितीय वस्तु के वर्तमान रहने से ही ब्रह्म परिच्छिन्न हो जाता है; उस द्वितीय वस्तु की सत्ता में ब्रह्म की व्याप्ति न रहने के कारण वह उसी द्वितीय वस्तु के द्वारा सीमाबद्ध हो जाता है, सीमाबद्ध होने ही से अभाव रह जाता है, अभाव रहने से ही दुःख भी अवश्यम्भावी है, अतएव श्रुति ने कहा है :—

यो वै भूमा तत्सुखं, नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखम्....

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अर्थात् जो भूमा (परिच्छेद-रहित, अनन्त) है, वही सुख है, अल्प में सुख नहीं है, भूमा ही सुख-स्वरूप है ।...

"यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमा, यत्रान्यत् पश्यत्यन्यच्छृणोत्यन्यद्विजानाति तदल्पं, यो वै भूमा तदमृतम्, अथ यदल्पं तन्मर्त्यम् ।"

अस्यार्थः—जिसके व्यतिरिक्त अन्य कुछ दृष्ट नहीं होता, अन्य कुछ श्रुत नहीं होता, अन्य कुछ ज्ञात नहीं होता, वही भूमा है। जहाँ भिन्न करके दर्शन होता है, भिन्न करके श्रुत होता है, भिन्न करके ज्ञात होता है, वह अल्प है। जो भूमा है वही अमृत है, जो अल्प है वह मृत्युधर्म्मशील है।

अतः ब्रह्म के आनन्दरूप से ही उसके अनन्तत्व और अद्वितीयत्व प्रतिपन्न होते हैं, यही श्रुति ने इससे निर्दिष्ट किया है।

एवञ्च निविष्टचित्त हो विचार करने पर यह भी बोधगम्य होगा कि ज्ञान के बिना आनन्द का अस्तित्व हो नहीं सकता। आनन्द यदि अनुभूत न होवे—जिसका आनन्द है वह यदि उसका अनुभव न कर सके—तो वह आनन्द उसके सम्बन्ध में अस्तित्वहीन है। शर्करा को हम लोग जड़ वस्तु कहते हैं, वह मीठी है, परन्तु उसके जड़ वस्तु होने के कारण, उसके पक्ष में उसका मिष्टत्व न रहने के ही समान है। मनुष्य इसके मिष्टत्व का अनुभव करते हैं, इस कारण इसे मीठी कहते हैं। अतएव

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शक्कर की मिष्टता मनुष्यों द्वारा अनुभूत होने के कारण, शक्कर मीठी है ऐसा प्रतिभात होता है। सुतरां मिष्टत्व अनुभव (ज्ञान) की अपेक्षा करता है। शक्कर के स्वयं अपने मिष्टत्व के अनुभवकर्त्ता न होने पर भी, दूसरे इसका अनुभव करते हैं, इस कारण उसमें मिष्टत्व है ऐसा कहा जाता है। किसी अनुभवकर्त्ता के वर्तमान न रहने से, शक्कर का मिष्टत्व रहना नहीं कहा जाता। परन्तु परमात्मा जब अनन्त, भूमा है, उसके अतिरिक्त द्वितीय कुछ नहीं है, तब उसके स्वयं अपने अनुभवकर्त्ता न होने पर, आनन्द का अस्तित्व और किस भाँति जाना जा सकता है? तथा उसको आनन्दमय कह-कर कौन व्याख्यात करेगा? अतएव उसके आनन्दमयत्व के द्वारा यह भी अवश्यमेव स्वीकार करना पड़ेगा कि वह स्वयं उस आनन्द का ज्ञाता भी है। उसकी चिच्छक्ति है, वह चिन्मय है। श्रुतियों ने भी ऐसा ही कहा है।

पुनः इस चिद्रूपता के स्वरूप का दत्तचित्त हो चिन्तन करने पर यह मालूम होता है कि, ज्ञान शब्द के उल्लेख से ही ऐसी धारणा करनी पड़ती है कि, ज्ञातव्य कुछ विषय है जिसके सम्बन्ध में ज्ञान होता है। ज्ञातव्य किसी विषय के न रहने पर, ज्ञान के अस्तित्व के सम्बन्ध में हम लोगों की कोई भी धारणा नहीं होती है। ब्रह्म एकमात्र अद्वितीय वस्तु है, सुतरां उसका स्वरूपस्थ ज्ञान उसके अतिरिक्त अन्य किसी को अपना विषय नहीं कर सकता है। पहले कहा गया है कि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उसका स्वरूप आनन्दमय है, अतः उसका ज्ञान उसके स्वरूपस्थ आनन्द को ही अपना विषय करता है। वह स्वयं अपने स्वरूपगत आनन्द का नित्य अनुभव करता है, इसी को बोध-गम्य कराने के लिए उसको चिदानन्दरूप सद्वस्तु कहते हैं।

ब्रह्म की चित्-शक्ति को ही "ईक्षण"-शक्ति कहते हैं। हम लोग ईक्षण कर—देखकर—वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करते हैं। ईक्षण-शक्ति ही जीवों की मुख्य ज्ञान-शक्ति है। दृष्टि के वर्त्तमान न रहने से सभी अन्धकारमय है। ईक्षण-शक्ति ही वस्तु-विषयक बोध उपजात कराने का प्रधान हेतु है। अतः चित्-शक्ति को ईक्षण-शक्ति कहकर श्रुतियों में जो वर्णित किया है यह सार्थक ही है। इस चित्-शक्ति का निज स्वरूप कैसा है इस विषय पर चिन्तन करने से हम लोगों को अपनी अभिज्ञता से यह मालूम होता है कि यह आनन्द का ही अनुभवमात्र है। बाह्य विषयों से वियुक्त होने पर निर्मल ज्ञान का क्या स्वरूप होता है, उसे (बाह्यविषयमात्र के ध्यान को छोड़कर) चित्त के स्वरूप में स्थिति-रूप निर्विषयक समाधि की अवस्था में बहु परिमाण से ज्ञात कर सकते हैं। परन्तु यह समाधि साधारण मनुष्यों के लिए दुस्साध्य है, उसका किञ्चित् सादृश्य सुषुप्ति के साथ ही है। निद्रा के साधारणतः तामस-वृत्ति-प्रधान होने के कारण गाढ़ निद्रा में भी चित्त बाह्य-वस्तु-विषयक ज्ञान से विवर्जित होता है; अतः समाधि और सुषुप्ति में इस विषय में सादृश्य है। सुषुप्ति के

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

समय चित्त का स्वरूप कैसा है इसका निरूपण करने में यह दृष्ट होता है कि, यह एक प्रकार का आनन्दानुभवमात्र है; उस समय जो ज्ञान होता है वह बाह्यवस्तु-निरवलम्ब एक प्रकार का सूक्ष्म आनन्दानुभवमात्र है। निद्रा के भङ्ग होने पर केवल यह स्मृति रहती है कि मैं सुख से सोता था—आराम से था। यह स्मृति निद्रावस्था की अनुभूति की अनुमापक तथा परिचायक है। यह स्मृति जब आनन्दानुभव (आराम) की स्मृति है, तब इसके पूर्वहेतुभूत निद्रितावस्था का अनुभव भी आनन्द ही का अनुभव था, इस विषय में कुछ भी सन्देह हो नहीं सकता। किसी बाह्य विषय के अवलम्बन से वह आनन्द नहीं हुआ, अतः बाह्यवस्तु-निरवलम्ब जो ज्ञान है, उसे आनन्द का ज्ञान कहकर हम लोग अवधारित कर सकते हैं। किसी बाह्य वस्तु का ज्ञान न होने के कारण, निद्रितावस्था का आनन्दानुभव ज्ञान का ही अङ्गीभूत है।

अतएव ब्रह्म का स्वरूपगत जो ज्ञान है उसके स्वरूप पर विचार करने से भी इसे हम आनन्द का ज्ञान कहकर ही अवधारित कर सकते हैं। सुतरां एक ओर ब्रह्म का स्वरूपगत आनन्द जैसे उसकी चिन्मयता का प्रकाशक है, वैसे ही उसकी चिन्मयता भी उसकी आनन्दमयता की प्रकाशक है।

पूर्वोद्धृत "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" यह श्रुति जो तैत्तिरीय उपनिषद् की ब्रह्मवल्ली में उल्लिखित है, इसके अन्तर्गत "अनन्त" शब्द के अभिप्राय को उसी श्रुति ने उसके परवर्त्ती

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ब्राह्मणांश में विस्तृत करते हुए कहा है कि, इसी ब्रह्म से आकाश, वायु इत्यादि अनन्त जगत् तथा अनन्त जीव प्रकाशित हुए हैं। एवञ्च यह जगत् अन्नमय, प्राणमय, मनोमय तथा विज्ञानमय है, एवं ये सब आनन्दमय ब्रह्म से ही प्रकाशित हुए हैं। सर्वापेक्षा सूक्ष्म जो विज्ञानमय आत्मा है उसके अभ्यन्तर मूल कारण-स्वरूप यह आनन्दमय ब्रह्म अवस्थित है।

यह कहकर उस श्रुति ने कहा है :—

"सोऽकामयत, बहु स्यां प्रजायेयेति, स....सर्वमसृजत"। यदिदं किञ्च। तत्सृष्ट्वा....सच्च त्यच्चाभवत्।.... सत्यञ्चानृतञ्च सत्यमभवत्। यदिदं किञ्च तत् सत्यमित्याचक्षते। इत्यादि।

अस्यार्थः—उसी परमात्मा ने इच्छा की कि मैं बहु होऊँ, मैं उपजात होऊँ, वह मूर्त्त तथा अमूर्त्त हुआ...सत्य तथा असत्य जो कुछ है वह सभी हुआ। अतः वह एकमात्र सत्य वस्तु (सत् वस्तु) है ऐसा कहा जाता है; इत्यादि। इसके पश्चात् ही पूर्वोद्धृत "रसो वै सः, रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति" इत्यादि श्रुति उल्लिखित हैं। एवं ब्रह्म का यह स्वरूपगत आनन्द ही जगत् का उपादान है, यह परवर्त्ती भृगुवल्ली में तथा पूर्वोद्धृत "आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते" इत्यादि श्रुतियों में वर्णित है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अतएव "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" इस श्रुतिवाक्य में जो अनन्त शब्द प्रयुक्त हुआ है, उससे यह स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि, ब्रह्म अनन्त और विश्वमय है एवं यह विश्व उसी के स्वरूपगत आनन्दांश के अन्तर्भूत एकांश मात्र है। बहुस्थल में श्रुतियों ने इसे और भी स्पष्ट रूप से वर्णित किया है। यथा "सर्वं खल्विदं ब्रह्म", "ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्" इत्यादि। इस स्थल पर "इदम्" शब्द का अर्थ जगत् है, क्योंकि यह निर्देश किया (दिखा दिया) जा सकता है। अतः श्रुति का अर्थ यह है कि, यह अनन्त जगत् ब्रह्म ही था, अर्थात् ब्रह्म ही इसका आदि उपादान-कारण है। उसी में—उसी से—यह जगत् प्रकाशित होता है। (वह सर्वव्यापी, भूमा है—इस कारण उसी में जगत् प्रकाशित होता है, ऐसा कहा गया। अन्य स्थान तो और कुछ भी नहीं है जिसमें वह प्रकाशित हो सकता।) छान्दोग्य उपनिषद् में उल्लिखित है:—

"सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्।
तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति।"

अस्यार्थः—हे सौम्य! यह विश्व पहले सत् (ब्रह्म) ही था। वह सत् द्वितीय-रहित एक मात्र था। उसने ईक्षण किया कि मैं बहु होऊँ, बहुरूप से मेरा प्रकाश होवे।

इस स्थान पर भी "इदम्" शब्द अनन्त विश्व का वाचक है, एक ब्रह्म ही सद्वस्तु है, अतः इस श्रुत्युक्त "सत्" शब्द से

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ब्रह्म ही ज्ञात होता है। (इस सम्बन्ध में भाष्यकारों में कहीं भी मतभेद नहीं है।) अतः इस श्रुति का अर्थ यह है कि, अनन्तरूपविशिष्ट जगत् मूलतः सद्ब्रह्म ही है; वह उससे अभिन्न रूप से वर्तमान था। उस अवस्था में किसी विशेष रूप का प्रकाश नहीं था। सुतरां वह अमूर्त्त था। श्रुति ने कहा, वह (वही सद्ब्रह्म) उस अवस्था में द्वितीय-रहित एकमात्र सद्वस्तु था। (अतएव ब्रह्म से पृथक् अस्तित्व-शील कोई पदार्थ जगत् के उपादान कारण-रूप से वर्तमान नहीं था)। इसके पश्चात् श्रुति कहती है, उसी सद्ब्रह्म ने इस प्रकार ईक्षण किया जिससे वह बहुरूप से प्रकाशित हो सके। पहले ही कहा जा चुका है कि, ईक्षण, ज्ञान, चित्, ये सब एक ही अर्थ-बोधक पर्यायवाची शब्द हैं। अतः श्रुति के इस अंश का अर्थ यह है कि, ब्रह्म ही ने अपने को, एक होते हुए भी, बहुरूपों में (अनन्त रूपों में) ज्ञानगम्य किया। सुतरां ये जागतिक अनन्त रूप उसी के रूप हैं, ये सब उससे पृथक् अस्तित्वशील वस्तुएँ नहीं हैं, यह श्रुति-वाक्यों के द्वारा सुस्पष्ट रूप से ही वर्णित किया गया। परन्तु इस अनन्त जगद्रूप के अतीत उसका अमूर्त्त रूप भी है, यह भी इस वाक्य के द्वारा श्रुति ने स्पष्ट रूप से ही प्रथम प्रकाशित किया, यही उसका मूल-स्वरूप है। अतः जगत् उसका स्वरूपभुक्त एकांश मात्र है। उसका मूल रूप (जिससे जगत्-रूप प्रकाशित हुआ है वह) अमूर्त्त है; यह जगत्-रूप मूर्ति-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मान् है। अमूर्त्त रूप से मूर्त्त रूप का प्रकाश हुआ है। श्रुति के इस वर्णन से यह बोधगम्य होगा कि, इस अमूर्त्त मूल रूप की ऐसी शक्ति है जिससे मूर्त्त रूप प्रकाशित हो सकता है। वही शक्ति जगत्-प्रकाश का मूल हेतु है। अतएव यह जगत्-प्रकाशक शक्ति भी उसके स्वरूप में है यह भी इससे ज्ञात होता है। उसकी अङ्गीभूता (स्वरूपभुक्ता) वह शक्ति जगत् का कारण है, यह श्वेताश्वतर श्रुति ने स्पष्ट रूप से उल्लिखित किया है। यथा—

ॐ ब्रह्मवादिनो वदन्ति—

किं कारणं ब्रह्म, कुतः स्म जाताः।
जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठाः।
अधिष्ठाता केन सुखेतरेषु।
वर्त्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम्।

× × ×

× × ×

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्
देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्॥
यः कारणानि निखिलानि तानि
कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः॥

अस्यार्थः—ब्रह्मवादी लोग कहते हैं—ब्रह्म ही क्या जगत् का कारण है? हम लोग कहाँ से उपजात हुए हैं? उपजात

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

होकर किसके द्वारा जीवित हैं ? (कौन हम लोगों का पोषण करता है ?) और किसमें स्थित हैं ? किसके द्वारा परिचालित होकर सुख में तथा दुःख में वर्तमान हैं ?

× × ×

उन्होंने ध्यानस्थ होकर काल तथा आत्मा (जीव-शक्ति) से युक्त अपर समस्त कारणों के अधिष्ठाता, एक अद्वितीय, स्वप्रकाश, परमात्मा के गुणसमूह के अन्तरालय में स्थित निज अङ्गीभूत शक्ति को ही जगत् का मूलकारण कहकर दर्शन किया।

इस श्रुत्युक्त "देवात्मशक्तिम्" पद को व्याख्यात करने में श्रीमच्छङ्कराचार्यजी ने कहा है :—

देवस्य द्योतनादियुक्तस्य मायिनो महेश्वरस्य परमात्मन आत्मभूतां स्वतन्त्रां,—न सांख्यपरिकल्पितप्रधानादिवत् पृथग्भूतां स्वतन्त्रां, शक्तिं कारणमपश्यन्। दर्शयिष्यति च "मायान्तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनन्तु महेश्वरम्" इति। तथा ब्रह्मे एषा चतुर्विंशतिभेदभिन्ना माया परा प्रकृतिस्तत् समुत्था। तथा च "मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्"।

अस्यार्थः—"उन्हीं देवता की—सर्वप्रकाशकत्व-गुण-युक्त मायाशक्तिविशिष्ट महेश्वर परमात्मा की आत्मभूता (अस्वतन्त्रा, जो सांख्यशास्त्रोक्त प्रधानादि की भाँति पृथक्भूता—स्वतन्त्रा—नहीं है उसी) शक्ति को कारण कहकर देखा। इसको निम्नलिखित वाक्य में तथा आगे इस उपनिषद् ग्रन्थ में श्रुति

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

देखावेंगी। यथा—माया को ही प्रकृति कहकर तथा माया-शक्ति-विशिष्ट पुरुष को महेश्वर कहकर जानना। ब्रह्म-पुराण में ऐसी उक्ति है, यथा—इस माया को उसी से उपजात चतुर्विंशति विभिन्न रूपों में विभक्ता परा प्रकृति के नाम से जानना। एवञ्च (गीता में भी) इसी प्रकार की उक्ति है; यथा—मेरे ही अधीन होकर (मेरी ही अध्यक्षता से) प्रकृति सचराचर जगत् की सृष्टि करती है।"

इसी माया-शक्ति का नाम चतुर्विंशति तत्त्वात्मिका प्रकृति है, यह एतद्द्वारा स्पष्टीकृत हुआ है। इस ब्रह्म-स्वरूपगत शक्ति पर विचार करने से यह दृष्ट होता है कि, पूर्वोद्धृत अन्यान्य श्रुतियों ने जब ब्रह्म के स्वरूपगत आनन्द को ही जगत् का उपादान-कारण कहकर वर्णित किया है ("आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते") एवं इस स्थल पर जब ब्रह्म की आत्मभूता माया नाम्नी शक्ति जगत् का कारण कहकर वर्णित हुई है, तो यही समझना पड़ेगा कि ब्रह्म का स्वरूपस्थ जो आनन्द है उसी आनन्द की ऐसी योग्यता है जिसके द्वारा वह अपने में अनन्त रूपों से प्रकाशित हो सकता है। इस योग्यता अथवा शक्ति का नाम ही माया है। सुतरां यह शक्ति अनादि तथा नित्या है, यह श्रीमद्भगवद्गीता में भी स्पष्ट रूप से उल्लिखित है। यथा—

"प्रकृतिं पुरुषञ्चैव विद्ध्यनादि उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान्॥"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अस्यार्थः—प्रकृति और पुरुष (जीव) दोनों को "अनादि" जानना, तथा विकाररूप में प्रकाशित जगत् को एवं गुण-समूह को प्रकृति ही से उद्भूत कहकर जानना। अनन्त रूपों में अपने को प्रकाशित करने की शक्ति ब्रह्म के स्वरूपगत आनन्द में है, यह पूर्वोद्धृत श्रुति के द्वारा प्रमाणीकृत हुआ है। परन्तु प्रकाशित होना कहने ही से किसी के निकट प्रकाशित होना समझा जाता है। अनन्त रूपों से प्रकाशित होने का अर्थ "अनन्त रूपों से ज्ञानगम्य होना" है। ब्रह्म स्वयं एकमात्र सद्वस्तु है, अतः ये समस्त अनन्त रूप उसी की ज्ञानशक्ति के विषयभूत होते हैं—अर्थात् वह स्वयं ही अपने स्वरूपगत आनन्द को अनन्त रूपों से "ईक्षण" (अनुभव) करता है, यही समझना पड़ेगा; इसी को पूर्वोद्धृत "तदैक्षत अहं बहुस्याम्" श्रुति ने स्पष्ट रूप से प्रकाशित किया है।

ब्रह्म के अतिरिक्त जब द्वितीय कोई भी वस्तु नहीं है ऐसा श्रुति ने वर्णन किया है तब द्रष्टा जीव भी उसका अङ्गीभूत अंशमात्र है, यह भी इसके द्वारा कहा गया। जीव के स्वरूप पर विचार करने से भी यह दृष्ट होता है कि, वह नित्य सर्वज्ञ कभी नहीं है, उसके ज्ञान का व्यवच्छेद है। वह भी जागतिक वस्तुओं का ईक्षणकर्त्ता है, यह सत्य है; किन्तु जागतिक वस्तु-समूह को एक के पश्चात् और एक ऐसे क्रम से वह देखता है, एक संग समस्त को नहीं। उसका दर्शन-ज्ञान क्रमिक होने के कारण वह कालाधीन है। अतः वह

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विशेषज्ञ है—नित्य सर्वज्ञ नहीं है, उसके ज्ञान की सङ्कोच-वृद्धि तथा पारम्पर्य्य हैं। मुक्तावस्था-प्राप्त जीव के ज्ञान का विस्तार इतना अधिक है कि, वह जब जिस किसी वस्तु का ध्यान करता है तभी उसका स्वरूप उसके निकट उदित होता है; तथापि उसका ज्ञान ध्यानसापेक्ष रहता है, यह श्रुत्युक्त निम्नलिखित वाक्यादि के द्वारा निःसंशय रूप से प्रतिपन्न होता है, यथाः—

"स यदि पितृलोककामो भवति सङ्कल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति" इत्यादि। (छान्दोग्य—दहरविद्याप्रकरणे, २य अ०)

एवञ्च सभी शास्त्रों में मुक्त पुरुषों के कार्यों के वर्णन में यह उक्त है कि, वे ध्यानस्थ होकर अपने इच्छानुसार ज्ञातव्य विषय को जान सकते हैं। पूर्वोद्धृत वाक्यों के अन्तिम भाग में छान्दोग्य श्रुति ने कहा है—

यं यमन्तमभिकामो भवति, यं कामं कामयते, सोऽस्य सङ्कल्पादेव समुत्तिष्ठति, तेन सम्पन्नो महीयते। (वे जिन जिन विषयों में अभिलाषयुक्त होते हैं उनको प्राप्त होकर प्रीतियुक्त होते हैं।) अतएव पातञ्जल योगसूत्र के भाष्य के कैवल्यपादस्थ ३३ सूत्र के व्याख्यान में भगवान् वेदव्यासजी ने भी कहा है, "क्रमः (कालरूपक्रमः) कूटस्थ-नित्येषु स्वरूप-मात्रप्रतिष्ठेषु, मुक्तपुरुषेषु स्वरूपास्थिता क्रमेणैवाऽनुभूयत इति तत्राप्यलब्धपर्यवसानः, शब्दपृष्ठेनाऽस्तिक्रियामुपादाय कल्पित

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इति।" अर्थात् कूटस्थ नित्यस्वरूप-प्रतिष्ठ मुक्त पुरुषों को (स्वीय स्वरूप में) वर्तमानता-रूप में ही क्रम (कालक्रम) अनुभूत होता है, उनके सम्बन्ध में भी क्रम अन्तविशिष्ट नहीं है। (अर्थात् स्वरूप में वर्तमानता-रूप क्रम का उनके सम्बन्ध में कभी अन्त नहीं होता है, वे नित्य ही स्वरूप-प्रतिष्ठ होकर अवस्थिति करते हैं; अतः स्वरूप-प्रतिष्ठ भाव में अवस्थिति-रूप क्रम का अवसान नहीं होता है।) "अस्ति" (वर्तमान रहना) इसी मात्र क्रिया को उस अस्ति शब्द द्वारा ग्रहण करके उनके सम्बन्ध में क्रम हम लोगों को बोधगम्य होता है।

परन्तु समग्र जगत् का प्रकाशक ईश्वर नित्य-सर्वज्ञ है; सर्वज्ञ न होने से, वह इस अनन्त जगत् का सृष्टिकर्त्ता हो नहीं सकता; जगत् का द्रष्टा होते हुए भी वह, जीव की भाँति, विशेष द्रष्टा नहीं है; समग्र जगत् भूत-भविष्यत्-वर्तमान धर्म-विरहित भाव से उसके ज्ञान में नित्य प्रतिष्ठित है; क्योंकि वही सब का प्रकाशक है। अतः जीव में और उसमें प्रभेद है। वह नित्य-सर्वज्ञ है, जीव तद्रूप नहीं है।

इन सब विचारों का भी शेष फल यह है कि ब्रह्म चतुष्पाद से पूर्ण है—दृश्यमान जगत् प्रथम पाद, असम्यक्द्रष्टा (विशेषद्रष्टा) जीव द्वितीयपाद, सर्वज्ञ सर्वनियन्ता ईश्वर तृतीयपाद, एवं एकान्त अक्षर-ब्रह्म चतुर्थपाद। श्रुति ने भी इन चतुर्विध रूपों से ब्रह्म के स्वरूप का स्पष्ट रूप से वर्णन किया है—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(१) पादोऽस्य विश्वाभूतानि, त्रिपादस्यामृतं दिवि। (ब्रह्म का) एकपाद मात्र यह विश्व तथा भूतसमूह है; इसके (और भी) तीन पाद हैं; ये अमृत-रूप हैं एवं अलक्ष्य भाव से (आकाश अथवा स्वप्रकाश रूप में) स्थित हैं।

(२) "उद्गीतमेतत् परमन्तु ब्रह्म
तस्मिंस्त्रयं सुप्रतिष्ठाक्षरञ्च।
अत्रान्तरं ब्रह्मविदो विदित्वा
लीना ब्रह्मणि तत्परा योनिमुक्ताः" ॥
(१-७ श्वेताश्वतर)

अस्यार्थः—यही परब्रह्म वेदान्त में वर्णित (उद्गीत) हुआ है; उसमें तीनों (जगत्, जीव तथा ईश्वर, यह त्रितय) सुप्रतिष्ठित (नित्यरूप से स्थित) हैं; एवं वह अक्षर रूप में भी वर्तमान है। ब्रह्मविद् लोग ब्रह्म के इन सब भेदों को ज्ञात कर उसमें लीन होते हैं एवं संसार में यातायात से मुक्ति-लाभ करते हैं।

इस श्लोक में "तस्मिंस्त्रयम्" यह जो त्रिविधत्व वर्णित है वह किस प्रकार का है यह इसी उपनिषद् के निम्नलिखित श्लोक द्वारा स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है, यथा—

"ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशा-
वजा ह्येका भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता।
अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्त्ता
त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत्" ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अर्थात् "ज्ञ" (सर्वज्ञ) ईश्वर (सर्वनियन्ता), और "अज्ञ" (विशेषज्ञ, अल्पज्ञ) अनीश्वर (ईश्वर के नियन्तृत्वाधीन) जीव, दोनों अज (जन्मरहित) अनादि (नित्य) हैं; एवं भोक्ता (जीव) की भोग्यार्थ-प्रदायिनी प्रकृति भी जन्मरहिता (अनादि, नित्या) है। ब्रह्म ने जब इस त्रिरूप को प्राप्त किया है, तो वह आत्मा और अकर्त्ता होते हुए भी अनन्त तथा विश्वरूपी* है। अतएव (१) जीव के शरीरस्थानीय अनादि प्रकृति एवं प्रकृति से समुद्भूत अनन्त जगत्, (२) असर्वज्ञ जीव, (३) सर्वज्ञ ईश्वर—यह त्रिविध रूप ही

---

* उक्त श्रुति में "भोक्तृ" पद से जीव ही समझना पड़ेगा, ईश्वर नहीं। यह उसी श्वेताश्वतर श्रुति के चतुर्थाध्याय के अन्तर्गत ६,७ श्लोकों के वर्णन से निश्चित रूप से सिद्ध होगा।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति ॥ ४-६ ॥
समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचते मुह्यमानः ।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥४-७॥

अस्यार्थः—एकत्रस्थित सख्यभावापन्न दो पक्षी एक वृक्ष (शरीर) का आश्रय कर रहते हैं; उनमें एक (जीव) मिष्ट फल खाता है, दूसरा (ईश्वर) कुछ नहीं खाता—केवल दर्शनमात्र करता है। एक ही वृक्ष में पुरुष (जीव), आबद्ध हो (देह में आत्मबुद्धि रख) असमर्थ दीन हीन बुद्धिवश मोहग्रस्त होकर दुःख भोग करता है। वह जब अपनी उपासना द्वारा तुष्ट दूसरे (ईश्वर) को एवं उसकी महिमा को देखता है, तब वह बन्धनमुक्त हो विगतशोक (मुक्त) होता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पूर्वोद्धृत "तस्मिंस्त्रयं सुप्रतिष्ठा" वाक्य से लक्षित हुआ है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

परन्तु पूर्वोद्धृत "अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्त्ता" वाक्य में ब्रह्म को अकर्त्ता कहा है, किन्तु अपर श्रुति-वाक्यों में तथा अन्यान्य शास्त्रों में ब्रह्म को ही जगत् का सृष्टिकर्त्ता कहकर वर्णित किया है। इन सब विरुद्ध वाक्यों का सामञ्जस्य कैसे हो सकता है, इसका और भी परिष्कृत रूप से वर्णन होना आवश्यक है। उस सम्बन्ध में वक्तव्य यह है कि, सर्वरूपी जगत् ब्रह्म के ज्ञान में नित्य प्रकाशित है। भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान में ऐसा कुछ भी नहीं है जो उसके ज्ञान में नित्य प्रतिष्ठित न हो। वह नित्य-सर्वज्ञ नूतन रूप से और क्या सृजन करेगा? उसके सम्बन्ध में तो पूर्वादृष्ट नूतन कुछ भी हो नहीं सकता। जीव-ज्ञान में जो कुछ प्रकाशित होता है, हुआ है और होगा, वह सभी जब उसके ज्ञान में नित्यरूप से स्वरूपान्तर्भूत होकर प्रतिष्ठित है, तब वह नूतन और क्या करेगा? किसका कर्त्ता कहकर उसका वर्णन किया जा सकता है? अतएव "उसको" श्रुति ने "अकर्त्ता" कहा है*।

---

* "यत एवानन्तो विश्वरूप आत्मा अतएव अकर्त्ता कर्त्तृत्वादिसंसारधर्म्मरहित इत्यर्थः" इति शाङ्करभाष्ये। अर्थात् क्योंकि आत्मा अनन्त, विश्वरूप है, अतएव वह अकर्त्ता, कर्त्तृत्वादि संसार-धर्म विवर्जित है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परन्तु जीवज्ञान में वस्तु-समूह—आकृति-समूह—क्रम से जो प्रकाशित होते हैं वह ईश्वर के ही नियमाधीन होकर प्रकाशित होते हैं; इस नियम का व्यतिक्रम जीव कदापि घटित नहीं कर सकता; कारण, जीव के ज्ञान में जो पदार्थ जिस प्रकार क्रम से प्रकाशित होते हैं उसी प्रकार परस्पर सम्बन्धयुक्त होकर ब्रह्मसत्ता में भी वे नित्य वर्त्तमान हैं, इसका व्यतिक्रम घटित नहीं हो सकता। इस कारण जीवज्ञान में वह सबका नियन्ता तथा कर्त्ता है। जीवज्ञान में जागतिक समग्र वस्तु उत्पत्ति तथा ध्वंसशील हैं; अतएव जीव के समीप ब्रह्म को ही जगत् के उत्पत्ति, स्थिति तथा ध्वंस-कर्त्ता रूप में श्रुतियों ने उपदिष्ट किया है। "उसने अपने को बहुरूपों में प्रकाशित किया" ऐसी जो सब श्रुतियाँ हैं उन सबका यही अर्थ समझना होगा। वास्तव में श्रुति-वाक्यों में कोई भी विरोध नहीं है।

रूपहीन वस्तु किस भाँति रूपविशिष्ट वस्तु का उपादान हो सकती है, इस सम्बन्ध में भी किसी-किसी के मन में सन्देह उपस्थित हो सकता है; परन्तु अमूर्त्त अवस्था से मूर्त्त अवस्था की प्राप्ति सर्वत्र ही दृष्ट होती है। जलीय वाष्प दृष्टतः अरूप है, वह रूपधारी जल तथा बर्फ़ के रूप को सदैव धारण करता है। परमाणु-समूह रूपहीन कहकर प्रसिद्ध हैं। रूप-धारी पदार्थ-समूह उनके संयोग से उद्भूत होते हैं। द्रष्टा पुरुष अरूपी है, किन्तु रूपज्ञान उसके स्वरूप में सदा प्रतिष्ठित होता है; दोनों में अत्यन्त विरोध वर्त्तमान रहने पर अरूपी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

द्रष्टा रूप-समूह को धारण करने में असमर्थ होता। स्वप्नद्रष्टा निद्रित पुरुष अरूपी है; परन्तु स्वप्न में नानाविध रूपों को धारण करके वह उन्हें स्वयं ही देखा करता है। अतएव रूप और अरूप में केवल भाषागत विरोध ही दृष्ट होता है, वस्तुगत कोई विरोध नहीं है।

किसी किसी के मन में ऐसा सन्देह होता है कि, ब्रह्म जब एक अद्वितीय है, तब वह पुनः बहुरूपी कैसे हो सकता है; एक का एक ही रूप तो होना सम्भव है। परन्तु एकरूप रहते हुए भी बहुरूपता की प्राप्ति सर्वत्र ही दृष्ट होती है। समस्त जीवों की अधिष्ठानस्थानीय पृथिवी एक ही है, उससे ही अनन्त वृक्षलतागुल्मादि उद्भूत होते हैं, उन सबकी देह पृथिवी से उत्पन्न होती हैं, पृथिवी ही के रस से पुष्ट होती हैं तथा अन्त में पृथिवी ही में लीन होती हैं। सुतरां ये समस्त शरीर पृथिवी के ही रूपान्तर हैं; एवञ्च वृक्ष, लता, पत्र, फल प्रभृति को जङ्गम जीव भक्षण करते हैं, उनसे उनकी देह गठित तथा पुष्टि-प्राप्त होती हैं, और अन्त में ये सब देह भी पृथिवी में लय को प्राप्त होती हैं। अतएव पृथिवी का एक मृत्तिका रूप भी है, इसके उपरान्त असंख्य स्थावर जङ्गम-जीव-देह-विशिष्ट रूप भी है। पृथिवी के मृत्तिकारूपत्व के साथ इसके स्थावर-जङ्गम-रूप-विशिष्टत्व का कोई विरोध नहीं है। एक मृत्तिकारूप में स्वयं रहते हुए भी, पृथिवी बहु रूपों को धारण करने में समर्थ है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परन्तु इस सम्बन्ध में यह आपत्ति हो सकती है कि, पृथिवी आंशिक रूप से विकार-प्राप्त होकर स्थावर-जङ्गम देहादि रूपों में परिणत होती है; ब्रह्म अविकारी, अपरिणामी एवं अखण्ड कहकर शास्त्रों में सर्वत्र प्रसिद्ध है। उसके सम्बन्ध में पृथिवी की भाँति आंशिक भाव से अविकृत रहना और आंशिक भाव से नानाविध-रूप-विशिष्ट होना कैसे सम्भव है? इस संशय के निवारणार्थ वक्तव्य यह है कि, यह दृष्टान्त सम्पूर्ण रूप से ब्रह्म के सम्बन्ध में प्रयुज्य नहीं होता है, यह सत्य है। पृथिवी की भाँति ब्रह्म विकारी नहीं है, एवं पृथिवी के जैसे खण्ड-विभाग हैं वैसे खण्ड-विभाग ब्रह्म के निज अमूर्त्त रूप में नहीं हैं। अमूर्त्त कहने ही से अखण्ड समझना पड़ेगा। मूर्त्त न होने पर खण्ड हो नहीं सकता। परन्तु अपने स्वरूप में अविकृत रहते हुए भी उसमें बहुरूप दृष्ट हो सकते हैं, उसका दृष्टान्त अस्मद्व्याख्यात वेदान्तदर्शन में वर्णित है, यथा—

एक प्रस्तरखण्ड को खोदकर उसमें से काली, दुर्गा, राम, कृष्ण, शिव प्रभृति की मूर्त्तियाँ इच्छानुरूप प्रकाशित की जा सकती हैं; परन्तु उस प्रस्तरखण्ड को उक्त रूप से खोदने के पूर्व वे सभी मूर्त्तियाँ उस प्रस्तरखण्ड के साथ एक होकर उसमें अन्तर्निहित रूप से अप्रकाशित भाव से वर्त्तमान रहती हैं। खोदने से उन सब अन्तर्निहित रूपों में कोई भी परिवर्त्तन नहीं होता है; केवल प्रस्तर के जो सब अंश उन सब मूर्त्तियों के दर्शन

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

के बाधक रूप से अवस्थित रहते हैं, उन्हीं को खोदनकारी भास्कर दूरीभूत करता है। सुतरां प्रकाशित होने के पूर्व और पश्चात् समस्त मूर्त्तियाँ उस प्रस्तर से सम्पूर्ण अभिन्न रहती हैं। यदि कोई द्रष्टा अपनी दृष्टि-शक्ति को उन रूपमय अंशों में ही सीमाबद्ध कर निविष्ट कर सके, तो खोदनकार्य के बिना भी उसकी दृष्टि में वे सब रूप अविकृत प्रस्तर में भी प्रतिभात हो सकते हैं। अतएव प्रस्तर के रूप के सम्पूर्ण रूप से अविकृत रहते हुए भी, वह प्रस्तर नानारूपविशिष्ट है, ऐसा दृष्ट हो सकता है। दृष्टान्तस्थल में प्रस्तर का द्रष्टा अवश्य प्रस्तर से भिन्न है। यदि उन विभिन्न रूप-समूहों को देखने की शक्ति जो द्रष्टा में है उसका प्रस्तर में भी रहना स्वीकार किया जाय—तो अविकृत प्रस्तर के रूप में रहते हुए भी, प्रस्तर अपने को अनन्तरूपविशिष्ट भाव से देख सकता है। श्रुति कहती है—ब्रह्म ही द्रष्टा—ईक्षण-शक्ति-विशिष्ट—है, फिर वही दृश्यस्थानीय है; अतः वही एक अविकृत रूप में रहते हुए भी अपने को अनन्त रूपों से जो देखता है, यह उक्त दृष्टान्त के द्वारा सहज में बोधगम्य हो सकता है।

यह भी दृष्ट होता है कि, स्वप्नद्रष्टा पुरुष स्वयं अरूपी रहकर भी स्वप्न में नाना प्रकार से अपने को देखता है। जीव स्वरूपतः अरूपी होते हुए भी अपने को सदैव रूपविशिष्ट समझता है। ब्रह्म भी उसी प्रकार अरूपी होते हुए भी अपनी एक विशेष प्रकार की चित्-शक्ति द्वारा अपने को बहु-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रूपी भाव से देखता है। अतएव श्रुति के इस वाक्य पर हम लोगों को सन्देह करने का कोई भी कारण नहीं है।

परन्तु इस विषय में अपर एक सन्देह भी बहुतेरों के मन में उदित होता है; वह यह है कि, यदि भूत, भविष्यत् तथा वर्त्तमान में प्रकाशित सभी ब्रह्मसत्ता में नित्यरूप से विद्यमान हैं, तो ये सब किस भाँति कार्य-कारण-रूप में क्रम से उपजात हो सकते हैं? नित्य नूतन क्रियाएँ हो रही हैं तथा वस्तुएँ उपजात हो रही हैं,—ऐसे ही तो हम लोग देखा करते हैं। इन सबके ब्रह्मसत्ता में नित्य अवस्थित रहने पर इसकी सम्भावना कैसे हो सकती है; इस सन्देह को दूरीभूत करने के लिए अस्मत्कृत गुरु-शिष्य-संवाद ग्रन्थ के ३५ पृष्ठ से निम्नलिखित दृष्टान्त उद्धृत किया गया है।

"तुम लोगों ने बायस्कोप (Bioscope) यन्त्र देखा है; उसमें कभी ऐसा दृष्टिगोचर होता है कि, एक मनुष्य किसी स्थान से कुछ द्रव्य अपहरण कर भगा; चोर को वस्तु लिये जाते हुए देख गृहस्थ तलवार हाथ में लेकर उसके पीछे दौड़ा; नाना गलियों, पहाड़ों तथा जङ्गलों को अतिक्रम कर, गृहस्थ के चोर के समीपस्थ होने पर, दोनों लड़ने लगे; लड़ाई करते-करते गृहस्थ ने तलवार द्वारा चोर का शिरश्छेद कर अपनी वस्तु का उद्धार किया, इत्यादि। वास्तव में ऐसी घटनाओं के घटने के समय कोई मनुष्य उपस्थित रहकर जिस भाँति उन घटनाओं को सत्यरूप में देखता है, पश्चात् बायस्कोप-यन्त्र

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

द्वारा ठीक वैसे ही वे घटनाएँ दूसरे को भी दिखाई जाती हैं। सत्य घटना-समूह के घटित होने के प्रतिमुहूर्त्त उन घटनाओं के जो जो रूप दृष्ट हुए थे, उनका फोटोग्राफ (चित्रण) क्रम से अति द्रुतवेग से ग्रहण कर रक्षित किया जाता है; उन सब फोटोग्राफों को यन्त्रारूढ़ कर द्रुतवेग से एक के पश्चात् दूसरा क्रमानुसार दर्शकवृन्द को प्रदर्शित किया जाता है। सत्य घटना के घटित होने के समय जिस प्रकार एक कार्य-वत् और अन्य कारणवत् अनुभूत होता है, बायस्कोप-यन्त्रस्थ चित्रों को क्रम से प्रदर्शित करने के समय भी ठीक वैसे ही उन सब घटनाओं का कार्य-कारण-सम्बन्ध में अवस्थित रहना दृष्ट होता है। इन दोनों अवस्थाओं में कोई प्रभेद दृष्टिगोचर नहीं होता। परन्तु इसमें कोई भी सन्देह नहीं है कि, बायस्कोप-दर्शन के समय दृश्य पदार्थ-समूह (चित्र-समूह) का केवल क्रम से दर्शनमात्र होता है, उनमें पारस्परिक अन्य कोई सम्बन्ध नहीं है। उनमें कारण-स्थानीय जिस पदार्थ का रहना स्थूल चक्षु से दृष्ट होता है, वास्तव में कार्यस्थानीय वस्तु के प्रकाशन-विषय में उस दृष्टतः कारणस्थानीय वस्तु का कोई भी कर्त्तृत्व नहीं है, वे तुम्हारे निकट केवल निर्धारित क्रम से प्रकाशित हुई हैं। ब्रह्म की सत्ता में इस भाँति जागतिक समस्त चित्र क्रम से प्रतिष्ठित हैं। मैंने पहले ही कहा है कि, जीव कालशक्ति के अधीन है; अतएव जीवज्ञान में वे समस्त चित्र क्रम से प्रकाशित होते हैं। दो वस्तुओं के एक विशेष अवस्था

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

में प्रकाशित होने पर उनमें जो सम्बन्ध है, उसी को हम लोग कार्य-कारण-सम्बन्ध कहकर बोध करते हैं, तथा ऐसी ही उसकी व्याख्या करते हैं। देखो, जब तुम स्वयं किसी अङ्ग का चालन करना बोध करते हो, तब उस अङ्ग की ही विशेष-विशेष अवस्थाओं का ज्ञान तुमको क्रम से होता रहता है। तुम कहते हो कि, एक प्रस्तर को ठेलने में तुम शक्ति-प्रयोग करते हो; ठेलने के कार्य में तुम्हारे शरीरस्थ अङ्ग-समूह की जो जो विशेष-विशेष अवस्थाएँ प्रकाशित होती हैं, उनके अनुभव के अतिरिक्त उस शक्ति के सम्बन्ध में तुमको और क्या ज्ञान हो सकता है? द्रुत वेग से अनुभवसमूह परिवर्तित होता रहता है, तन्निमित्त उस विषय में तुम्हारी एक धारावाहिक एकत्व-बुद्धि उत्पन्न होती है। जैसे भिन्न भिन्न जलबिन्दु द्रुत वेग से संलग्न होकर क्रम से नदी में चलते रहते हैं, किन्तु तत्समस्त एक नदी के रूप में ज्ञात होते हैं; तथा जिस प्रकार प्रदीप-शिखा के प्रति मुहूर्त्त नूतन होने पर भी एक अखण्ड प्रदीपशिखा प्रतीत होती है, यह भी वैसे ही जानना। प्रत्येक मुहूर्त्त में परिवर्तित होने पर भी, संलग्नभाव से अनुभूति के विषय होने के कारण, उन सब (कार्य-कारण-अवस्थाओं) को प्रवाह-रूप में स्थित एक वस्तु कहकर बोध करते हो।"

श्रुति-वाक्य-समूह तथा ब्रह्मज्ञों के वाक्य ही अतीन्द्रिय ब्रह्म-स्वरूप के सम्बन्ध में एकमात्र अकाट्य प्रमाण हैं। इन सब वाक्यों को बोधगम्य कराने के हेतु, एवं ये सब वाक्य

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जो अनुमान-प्रमाण-विरुद्ध भी नहीं हैं, इसको प्रदर्शित करने के हेतु, ये सब विचार संक्षेपतः प्रवर्तित किये गये। वास्तव में अनुमान-प्रमाण इन्द्रियग्राह्य विषयों में ही प्रयुक्त होने के योग्य हैं; अतीन्द्रिय विषय के सम्बन्ध में ये निश्चित रूप से विश्वास उत्पादन करने में समर्थ नहीं हैं। अतः इस संक्षिप्त प्रबन्ध में इस विषय पर और अधिक विस्तृत विचार नहीं किया गया।

पहले जो कहा गया उसका सार यह है कि, जीव और जगत् ब्रह्म के अंशमात्र हैं। ब्रह्म का सर्वज्ञ ईश्वररूप इन दोनों का नियन्ता है, एवं ये त्रितय ही उसके चिदानन्दमय अक्षर-रूप से प्रतिभात हैं। परन्तु जीव ब्रह्म का अंशमात्र है, इस विषय को और भी कुछ परिष्कृत करना आवश्यक है। जैसे किसी वृक्ष के शाखा, पत्र, पुष्प आदि अंश हैं, और इन सब अंशों का समष्टिगत नाम ही वृक्ष है, और शाखा, काण्ड, पल्लवादि से विहीन होकर वृक्षरूप वस्तु वर्त्तमान नहीं रह सकती; जीव अथवा जगत् ब्रह्म का वैसा अंश नहीं है। पहले ही कहा गया है कि, ब्रह्म की ईक्षण-शक्ति के भेद से ही उसके स्वरूपगत आनन्द में अनन्त जगत्-रूपता प्रकाशित होती है। उस आनन्द में इस कारण से कोई विकार नहीं होता है। अतएव जगत् की अनन्तरूपता के प्रकाश का निमित्तकारण ब्रह्म की स्वरूपगत ईक्षण-शक्ति की विभिन्नता है। यह ईक्षण-शक्ति अनन्त प्रकार की है, अतः जीव को

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जो ब्रह्म का अंश कहते हैं उसे ब्रह्म का चिच्छक्ति रूप अंश समझना चाहिए। शक्ति को शक्तिमान् के अंश के अतिरिक्त और क्या कह सकते हैं? जीव में दर्शन-श्रवणादि शक्तियाँ हैं; सुषुप्ति की अवस्था में उसकी सत्ता के साथ एकीभूत होकर वे सब वर्तमान रहती हैं; शक्ति-रूप में इनका कोई प्रकाश नहीं रहता। जाग्रत होने पर दर्शनादि कार्यों के निमित्त वे शक्तिरूप में प्रकाशित होती हैं; सुतरां ये सब शक्तियाँ जीव के ही आत्मभूत तथा स्वरूपगत हैं। परन्तु शक्तिमात्र में ही जीव की सत्ता पर्याप्त नहीं है। शक्तियों को अतिक्रम करके भी उनके आश्रयरूप से जीव नित्य अवस्थित है। अतएव दर्शनादि शक्तियों के उससे अभिन्न होने पर भी, वह जब उनको अतिक्रम करके भी वर्त्तमान है, तब उन सब शक्तियों को उसके अंश के अतिरिक्त और क्या कह सकते हैं? भगवान् वेदव्यासजी ने समग्र शास्त्र-वाक्यों की पर्यालोचना कर जीवों के स्वरूप का वर्णन करने में वेदान्तदर्शन के द्वितीयाध्यायस्थ ३य पाद के १६श तथा १७श सूत्रों में जीवों को जन्ममृत्युविहीन शरीरातीत कहकर वर्णित कर १८श सूत्र में कहा है—"ज्ञोऽतएव" अर्थात् जीव ज्ञाता (द्रष्टा-स्वरूप) है—वह स्वरूपतः द्रष्टामात्र है, द्रष्टृत्व ही उसका स्वरूप है।

जीव के स्वरूप को इस प्रकार निर्दिष्ट कर उसी अध्याय के उक्त पादस्थ ४२संख्यक सूत्र में कहा है—"अंशो नानाव्यपदेशादन्यथा चापि दाशकितवादित्वमधीयत एके"। अर्थात्

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जीव परमात्मा का अंश है; कारण, किसी-किसी श्रुति में (ज्ञाज्ञौ इत्यादि श्रुतियों में) जीव को परमात्मा से भिन्न कहा है। दूसरी ओर अपर किसी-किसी श्रुति में ("तत्त्वमसि" इत्यादि वाक्यों में) जीव को ब्रह्म के साथ एक कहकर वर्णित किया है। यहाँ तक कि आथर्वण श्रुति में कैवर्त्त एवं धूर्त्तगण को भी ब्रह्म कहकर वर्णित किया है। परन्तु जीव के ब्रह्म का अंश होने पर ही इन उभयविध श्रुतियों में पारस्परिक सामञ्जस्य होता है; क्योंकि, अंश स्वयं सभी अवयवों में अंशी से अभिन्न है, अतः दोनों में इस कारण अभेद सम्बन्ध है ऐसा कहना पड़ेगा। फिर अंशी अंश को अतिक्रम करके भी रहता है, अंशमात्र में अंशी की सत्ता पर्याप्त नहीं है, इस कारण दोनों में भेद-सम्बन्ध भी है। सुतरां ब्रह्म के साथ जीव के भिन्नत्व तथा अभिन्नत्व इन दोनों प्रकार के सम्बन्धों के श्रुतियों के द्वारा वर्णित होने के कारण, जीव को ब्रह्म का अंश कहकर ही स्थिरीकृत करना पड़ता है। शाङ्करभाष्य में इस सूत्र का फलितार्थ भी इसी भाँति वर्णित हुआ है:—

"अतो भेदाभेदावगमाभ्यामंशत्वावगमः।"

[अर्थात्, अतएव श्रुति-विचार-द्वारा (ब्रह्म के साथ जीव के) भेद और अभेद इन दोनों ही के सिद्ध होने के कारण जीव ब्रह्म का अंश कहकर निर्द्धारित होता है।]

इस सूत्र के शाङ्करभाष्य में यह भी कहा गया है कि, जीव ब्रह्म का "अंश इव अंशः" अर्थात् जीव ब्रह्म का वास्तव

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

में अंश नहीं है परन्तु अंश-सदृश है। वास्तव में साधारणतः अंश शब्द खण्ड के अर्थ में ही व्यवहृत होता है। जैसे वृक्ष का एक अंश काटा गया ऐसा कहने से वृक्ष का एक खण्ड काटा गया ऐसा समझा जायगा। जीव इस प्रकार का खण्डरूप अंश नहीं है। वह शक्तिरूप अंश है यह पहिले ही कहा गया है; सुतरां जीव ब्रह्म का एक खण्ड नहीं है, किन्तु खण्ड के सदृश मात्र है, वह ब्रह्म का शक्ति-विशेष है। अतएव भाष्य में जो जीव को ब्रह्म का "अंश इवांशः" कहकर वर्णित किया है, यह हम लोगों के सिद्धान्त के प्रतिकूल नहीं है। परन्तु, जीव सम्पूर्ण ब्रह्म नहीं है, ब्रह्म के साथ जीव का भेद भी है, यह भाष्य में स्पष्ट रूप से ही उक्त हुआ है। यथाः—"न हि निरवयवस्य मुख्योंऽशः सम्भवति। कस्मात् पुनर्निरवयवत्वात् स एव न भवति? नानाव्यपदेशात्। योऽन्वेष्टव्यः...एवञ्जातीयको भेदनिर्देशो नासति भेदे युज्यते।" अर्थात् अवयव-रहित वस्तु का वास्तव में अंश हो नहीं सकता, अतः ब्रह्म जब निरवयव है तब वह क्यों (सम्पूर्ण रूप से ही) जीव नहीं है? उत्तरः—ब्रह्म के साथ जीव के भिन्नत्व का श्रुति ने उपदेश किया है, यथा—वह (ब्रह्म) जीव द्वारा अन्वेषणीय है.....इस प्रकार का भेद-निर्देश (ब्रह्म के साथ जीव का भेद-निर्देश) श्रुति न करती यदि कोई भेद न होता।

एक ही साथ ब्रह्म के सर्वज्ञत्व और अल्पज्ञत्व (एक ही साथ उसकी समग्र चित्-शक्ति को विषय करना और अंशमात्र

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

को विषय करना) कैसे सम्भव हैं, ऐसी शङ्का को दूरीभूत करने के लिए अस्मत्कृत गुरु-शिष्य-संवाद ग्रन्थ के २०-२२ पृ० से निम्नलिखित अंश उद्धृत किया जाता है:—

"एक दृष्टान्त द्वारा मैं इसे समझाता हूँ:—तुम्हारे सम्मुख यह एक स्तम्भ दण्डायमान है। तुम इस स्तम्भ का सम्पूर्णाङ्ग देखते हो; यही स्तम्भ का सम्यक् ज्ञान है। परन्तु निविष्ट भाव से चिन्तन करने पर देखोगे कि, बृहत्काय स्तम्भ के सम्यक् दर्शन के अन्तर्भूत इसके प्रत्येक अङ्ग का विशेष ज्ञान भी अवश्य वर्तमान है। अङ्ग-विशेष का ज्ञान तथा सम्यक् स्तम्भ का ज्ञान साथ ही साथ उत्पन्न होता है। जो कुछ सम्यक् दर्शन में है उसके अतिरिक्त कुछ भी उस विशेष विशेष (अङ्ग-विशेष के) दर्शन का विषयीभूत नहीं हो सकता। चिन्तन करने से ज्ञात होगा कि, तुम्हारे उस स्तम्भ-विषयक ज्ञान के बहुविध विशेषाङ्ग हैं; उसका वर्ण शुभ्र है, यह एक विशेष ज्ञान है; इसका कुछ अंश गोल, कुछ अंश चतुष्कोण, तथा कुछ अंश अन्य प्रकार का है, यह और एक विशेष ज्ञान है। पुनः यह कठिन है; शर्करा (शक्कर) से जो मन्दिर अथवा और किसी प्रकार के क्रीड़नक (खिलौने) प्रस्तुत किये जाते हैं, वे भी देखने में स्तम्भ के सदृश प्रतीत हो सकते हैं, परन्तु वे इतने दृढ़ नहीं होते, तथा उनके आस्वाद भी इससे (स्तम्भ के आस्वाद से) विभिन्न प्रकार के हैं। स्तम्भ पर आघात करने से एक विशेष

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रकार का शब्द होता है, वह धातु के शब्द के सदृश नहीं है। इन समस्त अवस्थाओं के द्वारा तुम इसको प्रस्तर-निर्मित जानते हो; यह सब भी स्तम्भ-विषयक अपरविध विशेष ज्ञान है। इसी प्रकार बहुविध विशेष ज्ञान स्तम्भ-दर्शन के साथ ही साथ उपस्थित होकर स्तम्भ-विषयक पूर्ण ज्ञान के अङ्गीभूत-भाव से वर्तमान रहते हैं। ये सब विशेष ज्ञान वास्तव में भिन्न-भिन्न इन्द्रिय द्वारा, तथा कियदंश अनुमान द्वारा भी, अर्जित होते हैं; किन्तु स्तम्भ-सम्बन्धी पूर्ण ज्ञान में समस्त विशेष ज्ञान एकत्र होकर वर्तमान रहते हैं। वे विशेष-विशेष अङ्गों के ज्ञान सम्यक् स्तम्भ-ज्ञान के अन्तर्भूत हैं। इस दृष्टान्त द्वारा तुम समझोगे कि सद्ब्रह्म की जो सम्यक् दर्शनशक्ति है, जिसको मैंने ईश्वर-शक्ति कहकर वर्णित किया है, उसके अन्तर्भूत रूप से प्रत्येक अङ्ग-विशेष के दर्शन की विशेष शक्ति भी अवश्य वर्तमान है, जिसके द्वारा उसी अङ्गविशेष का ज्ञान होता है। इस शक्ति को जीवशक्ति कहते हैं। सूर्य भगवान् के आकाश में उदित होने के साथ ही साथ जिस प्रकार उनका सम्यक् प्रतिबिम्ब चारों ओर व्याप्त होता है, और उस सम्यक् प्रतिबिम्ब के साथ ही साथ अनन्त सूक्ष्म रश्मि (किरणें) भी तदन्तर्भूत रूप से प्रसारित होती हैं, उसी प्रकार अनन्त सूक्ष्म जीवशक्तियाँ भी सम्यक्-दर्शन-कारी ईश्वर के अन्तर्भूत रूप से प्रकाशित होती हैं। ईश्वर और जीव, इन दोनों की दृश्य वस्तु एक सद्ब्रह्म ही है; ईश्वर सद्-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ब्रह्म का सम्यक् दर्शन करता है, जीव ईश्वराधीन रहकर उसी सद्ब्रह्म के विशेष-विशेष अंश का दर्शन करता है। यही जीव और ईश्वर का स्वरूपगत भेद है। परन्तु स्तम्भदर्शन-दृष्टान्त में मैंने कहा है कि, विशेष-विशेष स्तम्भाङ्ग का ज्ञान समग्र स्तम्भ-ज्ञान के अन्तर्भूत है; उसी प्रकार जीव को भी ईश्वर के अन्तर्भूत जानना। अतएव जीव स्वभावतः ईश्वराधीन, विशिष्ट चिच्छक्ति है; यही जीव का स्वरूप है।"

अस्मद्व्याख्यात वेदान्तदर्शन के ११-१२ पृ० में ब्रह्म की द्विरूपता के सम्बन्ध में निम्नलिखित रूप से व्याख्या हुई है, वह भी इस स्थान पर उद्धृत की जाती है—

"ब्रह्म-सम्बन्ध में श्रुति ही सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है। श्रुति ने ब्रह्म को एक ओर अक्षर-स्वभाव निर्विशेष सत् कहकर वर्णित किया है; दूसरी ओर सर्वरूपी, सर्वज्ञ, सर्वप्रकाशक, सृष्टि, स्थिति तथा लय का एकमात्र कारण भी कहकर वर्णित किया है। इस प्रकार से द्विविध अवस्था की स्थिति का कोई दृष्टान्त नहीं है, ऐसा भी नहीं; क्योंकि इसके दृष्टान्त सर्वत्र वर्तमान हैं। प्रत्येक वृक्ष (दृश्य वस्तु) के अवयव प्रति मुहूर्त्त परिवर्तित होते हैं, तथापि प्रत्यभिज्ञावृत्ति-द्वारा उसका निरवच्छिन्न (अखण्ड) एकत्व सर्वदा ज्ञात होता है। मनुष्य के बाल्यादि-वार्द्धक्य-पर्यन्त अनन्त परिवर्त्तन होते रहते हैं; किन्तु प्रत्येक परिवर्त्तन के अन्तरालय में स्थायी रूप से वह स्वयं वर्तमान रहता है। बाल्यकाल में और वार्द्धक्य में वही एक पुरुष वर्तमान रहता

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है। मनुष्य एक ओर निद्रायुक्त रहता है, और साथ ही साथ स्वप्न भी देखता रहता है। साधक व्यक्ति एक ओर आत्मचिन्ता में निमग्न रहता है, एवं उसी समय दूसरों से वार्तालाप भी करता है। तत्त्ववित् पुरुषों के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार से दो प्रकार की स्थिति का स्वयं भगवान् ने गीता-शास्त्र में वर्णन किया है। यथा—

नैव किञ्चित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।
पश्यन्,शृण्वन्,स्पृशन्,जिघ्रन्नश्नन्,गच्छन्,स्वपन्,श्वसन्॥
इत्यादि।"

अतएव जीव और जगत् ब्रह्म के अंश हैं, यह श्रुति, स्मृति, दर्शनशास्त्र और अनुमान—एतत्समस्त का ही सम्मत है। जीव और जगत् के ब्रह्म के अंशमात्र होने के कारण, ब्रह्म के साथ इन दोनों के सम्बन्ध को निरूपित करने में यह दृष्ट होता है कि, अंश सर्वावयव से ही अंशी के अन्तर्भूत—अंशी से अभिन्न—है; अतएव यह सम्बन्ध अभेद-सम्बन्ध है; दूसरी ओर अंशी की सत्ता अंशमात्र में पर्याप्त नहीं है, अंशी अंश को अतिक्रम करके भी वर्तमान है; सुतरां परस्पर में भेद भी है। अतएव दोनों के सम्बन्ध को सम्यक् वर्णित करने पर इसको भेदाभेद अथवा द्वैता-द्वैत के नाम से वर्णित करना पड़ेगा। यही श्री निम्बार्काचार्य्य*

---

* वङ्ग देश में श्री भगवान् निम्बार्क के सम्बन्ध में अधिकांश लोग अनभिज्ञ हैं। अपने वेदान्तभाष्य में उन्होंने अपने को नारद-शिष्य

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

का सिद्धांत है। द्वैतवादियों का द्वैतमत इसके अन्तर्भूत है; कारण ईश्वर और जीव में भेद-सम्बन्ध है, यह इस सिद्धान्त में

के नाम से वर्णित किया है। वास्तव में श्री भगवान् निम्बार्क प्राचीन ऋषि हैं; भविष्यपुराण में उनके सम्बन्ध में भगवान् वेदव्यासजी ने निम्नलिखित श्लोक में इस प्रकार उल्लेख किया है, यथाः—

उदयव्यापिनी ग्राह्या कुले तिथिरुपोषणे।
निम्बार्को भगवानेषां वाञ्छितार्थफलप्रदः॥

इस श्लोक को प्रक्षिप्त कहकर किसी को शङ्का हो नहीं सकती; कारण, यह बहुशताब्दी पूर्व असाम्प्रदायिक काशीवासी पण्डित द्वारा रचित सुविख्यात "निर्णयसिन्धु" नामक स्मृति-ग्रन्थ में, जन्माष्टमी व्रत के विचार में, उद्धृत किया गया है; एवञ्च और भी बहुशताब्दी पूर्व खृ० त्रयोदश शताब्दी में रचित प्रसिद्ध "हेमाद्रि" नामक ग्रन्थ में भी भविष्य-पुराण का यही श्लोक उद्धृत है। (ख्यातनामा पण्डितप्रवर भरतचन्द्र शिरोमणि-सङ्कलित "हेमाद्रि" नामक ग्रन्थ जो एशियाटिक सोसाइटी कर्तृक १८७८ खृष्टाब्द में मुद्राङ्कित हुआ है, उसका ७८४ पृष्ठ द्रष्टव्य है।) इस श्लोक में भगवान् वेदव्यासजी ने श्री निम्बार्काचार्य को "भगवान्" कहकर ही वर्णित किया है। इस वर्णन के पाठ से भगवान् निम्बार्काचार्य जो प्राचीन सिद्ध ऋषि थे, इस विषय में कोई भी सन्देह नहीं रह सकता। वे अरुण नामक ऋषि के पुत्र थे; सुतरां आरुणि के नाम से भी शास्त्र-ग्रन्थों में किसी-किसी स्थल पर वे वर्णित हुए हैं। नारद-कृत भक्तिसूत्र में ये ही आरुणि ऋषि भक्ति-मार्ग के प्रसिद्ध आचार्यों की श्रेणी में भुक्त किये गये हैं। जयदेव गोस्वामी निम्बार्क-सम्प्रदाय-भुक्त वैष्णव थे। उनके द्वारा पूजित श्रीकृष्ण-विग्रह अद्यापि निम्बार्कीय वैष्णवों की गद्दी पर सलीमाबाद में प्रतिष्ठित है। जयदेवजी द्वारा स्थापित एक मन्दिर उनके जन्मस्थान

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भी स्वीकृत है। विशिष्टाद्वैतवादियों का मत भी इसके अन्तर्भूत है, कारण ईश्वररूपी ब्रह्म के अधीन भाव से स्वातन्त्र्य-

---

केन्दुया ग्राम में है; उसके सम्बन्ध में सम्प्रति एक मुकद्दमे में यह सिद्ध हुआ है कि, वे निम्बार्क सम्प्रदाय के वैष्णव थे। श्री वृन्दावन में टाट्टि नामक निम्बार्क सम्प्रदाय के स्थान के (अकबर के गायक प्रसिद्ध तानसेन के गुरु निम्बार्क-सम्प्रदाय-भुक्त सिद्ध हरिदास स्वामी के भजन-स्थान के) गुरु-परम्परा-विवरण में जयदेव स्वामी का नाम उल्लिखित है। ये जयदेव स्वामी त्रयोदश शताब्दी के थे, यह वर्तमान काल में स्थिरीकृत हुआ है। पूर्वोक्त गुरु-परम्परा-विवरण से ज्ञात होता है कि, जयदेवजी के ४९ पुरुष पूर्व तथा हरिदास स्वामी जो अकबर के समय षोडश शताब्दी में प्रकटित हुए थे उनके ६३ पुरुष पूर्व श्री निम्बार्क आचार्य आविर्भूत हुए थे; सुतरां यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि, वे शङ्कराचार्य के बहु पूर्व आविर्भूत हुए थे। अतएव श्री निम्बार्काचार्य-कृत वेदान्त-दर्शन के भाष्य में जो शङ्कराचार्य के मत का खण्डन अथवा भाष्य का उल्लेख दृष्ट नहीं होता, यह स्वाभाविक ही है, परन्तु शाङ्करभाष्य में भेदाभेद सिद्धान्त के खण्डन करने की चेष्टा दृष्ट होती है। एतद्द्वारा यही अनुमित होता है कि, निम्बार्क स्वामी शङ्कराचार्य के पूर्व आविर्भूत हुए थे। एवञ्च भट्टभास्कर भी (जिन्होंने वेदान्तदर्शन के एक भाष्य की रचना की है) निम्बार्क-सम्प्रदाय-भुक्त वैष्णव थे। उनके प्रणीत भाष्य का बहुत प्राचीन एक हस्तलिपि-ग्रन्थ सलीमाबाद की गद्दी में वर्तमान है; उसमें दृष्ट होता है कि, ग्रन्थकार ने सर्वप्रथम निम्बार्काचार्य को प्रणाम कर ग्रन्थारम्भ किया है। भट्टभास्कर ने बहुत ही प्राचीन काल में जन्म ग्रहण किया था, यह भी आधुनिक पण्डितों द्वारा स्थिरीकृत हुआ है। हमारे सम्प्रदाय में ऐसी किंवदन्ती भी परम्परा रूप से

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रहित होकर जगत् और जीव नित्य वर्तमान हैं, यह भी इस सिद्धान्त में स्वीकृत है। एकान्ताद्वैतवादियों का एकान्ताद्वत सम्बन्ध भी इस मत के अन्तर्भूत है; कारण, अक्षर ब्रह्म जो सर्वप्रकार विशेष-रहित नित्य एकरस है, यह इस भेदाभेद सिद्धान्त को भी स्वीकृत है। परन्तु ये सब सिद्धान्त ब्रह्म के श्रुतिप्रणोदित चतुष्पादों में से किसी-किसी विशेष पादमात्र के प्रति लक्ष्य कर स्थापित किये गये हैं, अपर पादों के प्रति लक्ष्य नहीं किया गया।

परन्तु द्वैताद्वैत सिद्धान्त ब्रह्म के श्रुत्युक्त पूर्ण चतुष्पादत्व के ऊपर स्थापित है। एकान्ताद्वैत सिद्धान्त की भाँति इसमें जगत् और जीव को अविद्या-कल्पित मिथ्या कहकर त्याग नहीं किया जाता, तथापि ब्रह्म से स्वतन्त्र रूप में इनके अस्तित्व का परिहार किया जाता है। अतः कार्यतः विरोध अति अल्प ही है; कारण, व्यवहारिक अस्तित्व के नाम से जगत् का अस्तित्व उनको भी स्वीकृत है। द्वैतवादियों के द्वैतत्वसिद्धान्त में जीव के ईश्वर से विभिन्नत्व का अनुमोदन

चली आती है कि श्री निम्बार्काचार्य जनमेजय के राजत्व-काल में प्रकटित हुए थे।

अस्मत्कृत "गुरु-शिष्य-संवाद" ग्रन्थ में द्वैताद्वैत सिद्धान्त-सम्बन्धीय नाना प्रश्नों के उत्तर में इस मत की अति विस्तृत रूप से व्याख्या की गई है। गुरु-शिष्य-संवाद तथा वेदान्तदर्शन के (विशेषतः इसकी भूमिका और उपसंहार के) पठन से ही एतत्-सम्बन्धीय समस्त प्रकार के सन्देह दूरीभूत होंगे।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

किया जाता है। द्वैताद्वैत-सिद्धान्त में एक ही ब्रह्मस्वरूप में ये दोनों नित्य अवस्थित हैं—अतः दोनों के ब्रह्मत्व के वर्णित होने पर भी, ईश्वरत्व से जीवत्व की भिन्नता भी नित्य कहकर स्वीकृत होती है।

पूर्वोक्त चतुष्पाद-विशिष्ट रूप से ही ब्रह्म के पूर्णत्व और सर्वव्यापित्व सिद्ध होते हैं। इस प्रकार के सर्वव्यापित्व को व्यक्त करने के लिए ही ब्रह्म की विष्णु-संज्ञा होती है। "व्यापकत्वात् विष्णुः"—विष्णु शब्द का अर्थ सर्वव्यापक है। वे सबके चित्तों को आकर्षित करते हैं, वे सबकी आत्मा हैं, अतः प्रियतम के अर्थ में उनकी "कृष्ण" संज्ञा भी होती है।

अब इस द्वैताद्वैत सिद्धान्त की अनुयायिनी साधन-प्रणाली का विशेषत्व क्या है यह नीचे प्रदर्शित होता है:—

पहिले कहा गया है कि, हमारे सिद्धान्त में जीव ब्रह्म ही की स्वरूपगता चिच्छक्ति का प्रकार-भेद है, जीव स्वरूपतः विशेषज्ञ—विशेषद्रष्टा—मात्र है। और जगत् ब्रह्म के स्वरूपभूत आनन्द का विशेष-विशेष रूप से प्रकाशभाव मात्र है। सांख्यशास्त्र में जीव का साधारण नाम "पुरुष" है, और जगत् के मूल सूक्ष्मतम उपादान को "प्रकृति" के नाम से आख्यात करते हैं। इसी का नाम माया-शक्ति है, इसका स्वरूप पहिले ही वर्णित हुआ है। परन्तु जैसे ब्रह्मसत्ता में उसके स्वरूपस्थ चित् और आनन्द अभिन्न होकर संयुक्त भाव से नित्य वर्तमान हैं, वैसे ही पूर्वोक्त दोनों के अङ्गीभूत जगत् और जीव भी नित्य संयुक्त भाव से वर्तमान हैं। केवल

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जड़ प्रकृति के नाम से कुछ भी वर्तमान नहीं है, एवं केवल चित् के नाम से भी पृथक् रूप से स्थित न कुछ है, न कुछ हो सकता है। यह भी पहिले कहा गया है कि, जागतिक प्रत्येक पदार्थ में न्यूनाधिक परिमाण में चैतन्य (चिच्छक्ति) निहित है। एक धूलिकण को यदि अणुवीक्षण यन्त्र के द्वारा देखा जाय, तो मालूम होगा कि इसके भी गठन में अति विचित्र कौशल विद्यमान है; स्थावर-जङ्गमादि की भाँति इसका भी रूप स्वतःपरिवर्तनशील—वृद्धिशील तथा क्षय-शील—है; एवञ्च जिस प्रकार स्थावर-जङ्गमात्मक देह के रूपों के परिवर्तन के अभ्यन्तर बुद्धिमत्ता का परिचय सर्वत्र दृष्ट होता है, उसी प्रकार धूलिकण-समूह के अवयव के परिवर्तन में भी बुद्धिमत्ता का परिचय लक्षित होता है।

विष्णुपुराण में भगवान् वेदव्यासजी ने कहा है—

"एतत्सर्वमिदं विश्वं जगदेतच्चराचरम्।
परब्रह्मस्वरूपस्य विष्णोः शक्तिसमन्वितम्॥ ६०॥

विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथाऽपरा।
अविद्या कर्मसंज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते॥ ६१॥

यया क्षेत्रज्ञशक्तिः सा वेष्टिता नृप सर्वगा।
संसारतापानखिलानवाप्नोत्यनुसन्ततान्॥ ६२॥

तया तिरोहितत्वाच्च शक्तिः क्षेत्रज्ञसंज्ञिता।
सर्वभूतेषु भूपाल तारतम्येन लक्ष्यते॥ ६३॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अप्राणवत्सु स्वल्पाल्पा स्थावरेषु ततोऽधिका ।
सरीसृपेषु तेभ्योऽन्याप्यतिशक्त्या पतत्रिषु ॥ ६४ ॥

* * * *

एतान्यशेषरूपस्य तस्य रूपाणि पार्थिव ॥ ६७ ॥
यतस्तच्छक्तियोगेन व्याप्तानि नभसा यथा ।
द्वितीयं विष्णुसंज्ञस्य योगिध्येयं महामते ॥ ६८ ॥"

(इनमें कोई-कोई श्लोक पहिले उद्धृत हुए हैं ।)

अस्यार्थः—समग्र विश्व चराचर समग्र जगत् परब्रह्म-स्वरूप विष्णु की शक्ति का प्रकाश है (विष्णुशक्ति-समन्वित होकर प्रकट हुआ है) ॥ ६० ॥

इन्हीं विष्णु की तीन प्रकार की शक्तियाँ हैं। उनमें एक का नाम परा शक्ति है । उनकी क्षेत्रज्ञा शक्ति को अपरा शक्ति के नाम से वर्णित करते हैं । इसके अतिरिक्त एक और तृतीया शक्ति है, जिसको अविद्या नाम्नी कर्मशक्ति कहते हैं ॥ ६१ ॥

हे राजन् ! सर्वव्यापिनी क्षेत्रज्ञा शक्ति (पुरुष) इस कर्म-शक्ति से परिवेष्टित रहकर निरन्तर नाना प्रकार के सांसारिक तापों को भोगती रहती है ॥ ६२ ॥

हे राजन् ! इस कर्मशक्ति के द्वारा प्रच्छन्न भाव को प्राप्त होने के कारण पूर्वोक्त क्षेत्रज्ञा शक्ति (विभिन्न पदार्थों में) न्यूनाधिक रूप से प्रकट होती है ॥ ६३ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्राणहीन पदार्थों में यह शक्ति अत्यल्प परिमाण में प्रकट होती है; स्थावर वृक्षादि में उससे कुछ अधिक, सरीसृपादि में और भी अधिक तथा पक्षियों में उससे भी अधिक परिमाण में प्रकट होती है ॥ ६४ ॥

❀ ❀ ❀ ❀

हे पार्थिव ! ये समस्त रूप उन्हीं अनन्तरूपी विष्णु के ही रूप हैं ॥ ६७ ॥

कारण, आकाश द्वारा जिस प्रकार समग्र जगत् व्याप्त है, उसी प्रकार विष्णु-शक्ति द्वारा एतत्समस्त व्याप्त हैं। हे महामते ! सर्वव्यापक विष्णु की यही द्वितीय ध्येय मूर्त्ति है ॥ ६८ ॥

अतएव इस भेदाभेद सिद्धान्त के अनुगामी साधन का एक प्रधान अङ्ग समग्रजगन्मय ब्रह्म का ध्यान है—पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग, साधु, असाधु—सभी का ब्रह्म बुद्धि से दर्शन करना, किसी के भी प्रति घृणा अथवा विद्वेष न करना, अपने को किसी से भी श्रेष्ठ समझकर अहंकृत न होना, पृथक् रूप से अस्तित्वशील अहंबुद्धि का सर्वप्रकार से विनाश-साधन करना।

इस प्रकार का साधन प्रशंसनीय है ऐसा ही श्रीमद्भगवद्गीता के निम्नलिखित एवं अन्यान्य वाक्यों में उपदिष्ट है; यथा:—

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥५।१८॥
सुहृन्मित्रार्य्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥ ६।९ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस एक ही साधन के अङ्गीभूतरूप से अपर समस्त साधन स्वयं ही प्रवर्त्तित होते हैं; यथा:—प्रवञ्चना न करना, सत्यवादी होना, निज भोग्यस्थानीय कहकर किसी भी पदार्थ में लोभ न करना; कारण, भोग्य-भोक्तृभाव सम्पूर्ण द्वैतत्व पर प्रतिष्ठित है। यदि निज आत्मा तथा दृष्टत: भोग्य वस्तु की आत्मा एक ब्रह्मरूप से प्रतीत होवें, तो चाहे अपनी देह कितनी ही कमनीय क्यों न होवे, जिस प्रकार उसके प्रति भोगेच्छा कदापि उपजात नहीं होती है, उसी प्रकार अन्य देह अथवा वस्तु पर भोग्यभावयुक्त लोभ स्वत: ही वर्जित होता है। सर्वप्रकार निन्दाबुद्धि तथा दोष-दर्शन का परित्याग करना, इत्यादि। इसी प्रकार के साधन ही को भक्तिमार्ग का साधन कहते हैं। ऐसा साधन करते करते साधक की अहमिका क्षयप्राप्त होती है, समग्र जीवजगत् की ब्रह्म ही की विभूति-रूप से धारणा बद्धमूल होती है, और उसका सर्वत्र समदर्शन प्रतिष्ठित होता है। यही शुद्ध सत्त्व का लक्षण है। इस भूमि पर प्रतिष्ठित होने के पश्चात् स्वत: ही परब्रह्म के प्रति परा भक्ति सञ्चारित होती है, जिसके द्वारा साधक अन्त में उसे प्राप्त कर उसी भाँति भगवद्भाव-प्राप्त हो निज निर्मल मुक्त स्वरूप में प्रतिष्ठित होता है जिस भाँति नदियाँ नामरूपवर्जित होकर समुद्र के साधर्म्य को प्राप्त होकर समुद्र के अङ्गीभूत भाव से प्रतिष्ठित होती हैं। इस सम्बन्ध में कई एक शास्त्रीय प्रमाण भी नीचे दिये जाते हैं, जो मत्प्रणीत श्री १०८ श्री स्वामी राम-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दास काठिया बाबाजी के जीवनचरित-ग्रन्थ के परिशिष्टांश में उद्धृत किये गये हैं।

"श्रीमद्भागवत पुराण के एकादश स्कन्ध के द्वितीयाध्याय में इस प्रकार वर्णन है:—

"सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥ ४३॥
ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु वा।
प्रेम-मैत्री-कृपापेक्षा यः करोति स मध्यमः॥ ४४॥
अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते।
न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः॥ ४५॥

* * * *

न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा।
सर्वभूतसमः शान्तः स वै भागवतोत्तमः॥ ५०॥
त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठस्मृति-
रजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात्।
न चलति भगवत्पदारविन्दाल्लव-
निमिषार्द्धमपि स वैष्णवाग्र्यः॥ ५१॥"

अस्यार्थः—जो सर्वभूतों में सर्वात्मा भगवान् ही को देखते हैं और सर्वभूतों को परमात्मा भगवान् ही में स्थित देखते हैं, उन्हीं को भागवत-प्रधान जानना॥ ४३॥

LIBRARY
No.
CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

और जो ईश्वर में प्रेम, उनके अधीन भक्तों के साथ मित्रता का भाव और साधारण अज्ञ जनों पर कृपा, तथा भगवान् और उनके भक्तों पर विद्वेषभाव पोषित करनेवाले लोगों पर उपेक्षा-बुद्धि प्रकट करते हैं, वे मध्यम कोटि के भागवत गिने जाते हैं ॥ ४४ ॥ (श्रीधर स्वामी ने टीका में कहा है कि, इस प्रकार के भक्त को मध्यम श्रेणी के इसलिए कहते हैं कि उनकी भेद-बुद्धि विगत नहीं हुई है ।)

जो केवल प्रतिमादि में श्रद्धा के साथ भगवान् को पूजते हैं, पर उनके भक्तों और दूसरों में (भगवद्भाव समझने में असमर्थ होने के कारण) पूज्यता का अनुभव नहीं करते, उनको प्राकृत अर्थात् भक्तिमार्ग में साधारण रूप से प्रविष्ट भक्त समझना ॥४५॥

❀ ❀ ❀ ❀

जिनको (धन-पुत्रादि) वित्तादि में—यहाँ तक कि अपने शरीर के विषय में भी—अपने पराये का अनुभव नहीं है, जो सर्वभूतों में समदर्शी तथा प्रशान्त हैं उनको भागवतों में उत्तम समझना ॥ ५० ॥

जो अजितात्मा (हरिगतप्राण) हैं, देवादिदुर्लभ भगवत्पदारविन्द से लवनिमेषार्द्ध काल के लिए भी चलचित्त नहीं होते हैं, एवं त्रिभुवन के समस्त ऐश्वर्य-लाभ के हेतु भी कभी उसको विस्मृत नहीं होते (उसी के स्मरण में प्रतिक्षण लीन रहते हैं), उन्हीं को वैष्णवों में अग्रगण्य समझना ॥ ५१ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भागवतधर्मानुष्ठान किस प्रकार से किया जाता है, इस विषय में उद्धवजी की जिज्ञासा से भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी ने स्वयं श्रीमुख से श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध के २९ अध्याय में निम्नलिखित उपदेश दिये थे :—

श्री भगवानुवाच :—

"हन्त ते कथयिष्यामि मम धर्मान् सुमङ्गलान् ।
यान् श्रद्धया चरन्मर्त्यो मृत्युं जयति दुर्ज्जयम् ॥८॥
कुर्यात् सर्वाणि कर्माणि मदर्थं शनकैः स्मरन् ।
मय्यर्पितमनश्चित्तो मद्धर्मात्ममनोरतिः ॥ ९ ॥
देशान् पुण्यानाश्रयेत मद्भक्तैः साधुभिः श्रितान् ।
देवासुरमनुष्येषु मद्भक्ताचरितानि च ॥ १० ॥
पृथक् सत्रेण वा मह्यं पर्वयात्रामहोत्सवान् ।
कारयेन्नृत्यगीताद्यैर्महाराजविभूतिभिः ॥ ११ ॥
मामेव सर्वभूतेषु बहिरन्तरपावृतम् ।
ईक्षेतात्मनि चात्मानं यथा खममलाशयः ॥ १२ ॥

❀ ❀ ❀

नरेष्वभीक्ष्णं मद्भावं पुंसो भावयतोऽचिरात् ।
स्पर्द्धासूयातिरस्काराः साहङ्कारा वियन्ति हि ॥ १५ ॥
विसृज्य स्मयमानान् स्वान् दृशं व्रीडाञ्च दैहिकीम् ।
प्रणमेद्दण्डवद्भूमावाश्वचाण्डालगोखरम् ॥ १६ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यावत् सर्वेषु भूतेषु मद्भावो नोपजायते ।
तावदेवमुपासीत वाङ्मनःकायवृत्तिभिः ॥ १७ ॥

* * *

अयं हि सर्वकल्पानां सध्रीचीनो मतो मम ।
मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायवृत्तिभिः ॥ १९ ॥"

अस्यार्थः—श्री भगवान् बोले—"हे उद्धव ! मेरे जिन मङ्गलप्रद समस्त धर्मों का श्रद्धा के साथ आचरण कर मर्त्य-लोक के मनुष्य दुर्जय मृत्यु को जीत सकते हैं, मैं तुमसे उन भागवत धर्मों के विषय में कहता हूँ ॥ ८ ॥

मुझमें मन और चित्त को अर्पण कर और मेरे धर्म्म-यजन में निष्ठापूर्वक दत्तचित होकर, तथा असम्भ्रान्त मन हो मेरा स्मरण करते हुए, समस्त कर्मों को करना उचित है ॥ ९ ॥

मेरे भक्त साधु लोग जिन सब पुण्यमय स्थानों में निवास करते हैं, वहीं आश्रय लेना उचित है; और देवता, असुर और मनुष्यों में जो लोग मेरे भक्त हुए हैं उन्हीं के आचरणों का अनुसरण करना चाहिए ॥ १० ॥

एकाकी अथवा मेरे भक्तों के साथ सम्मिलित होकर महाराजोचित सामग्रियों के द्वारा और नृत्य-गीतादि करते हुए मेरे उद्देश्य में पर्वयात्रा महोत्सवादि करना और कराना उचित है ॥ ११ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ऐसा करते-करते निर्मल होकर सर्वभूतों में भीतर-बाहर सर्वव्यापी आकाश की भाँति प्रकाशमान और अपने अन्तःकरण में आत्मा के रूप में विराजमान मुझको देखना चाहिए ॥ १२ ॥

* * *

जो पुरुष मनुष्यमात्र में ही मुझे निरन्तर विद्यमान देख सकता है, उसका अहङ्कार और उसकी दूसरों पर स्पर्द्धा, द्वेष और तिरस्कार-विषयक बुद्धि थोड़े ही समय में जाती रहती है ॥ १५ ॥

उपहास करनेवालों की ओर ध्यान न देकर 'मैं उत्तम हूँ, वह नीच है' इत्यादि शरीर-सम्बन्धी दृष्टि और लज्जा आदि का परित्याग कर, अश्व, चाण्डाल, गो-गर्दभादि सबको भूमि पर गिरकर दण्डवत्-प्रणाम करना उचित है ॥ १६ ॥

जब तक सर्वभूतों में मेरी सत्ता का अनुभव न हो, तब तक तन, मन, वचन से इसी प्रकार उपासना में संलग्न रहना चाहिए ॥ १७ ॥

* * *

तन, मन, वचन से सर्वभूतों में भगवद्भाव का अनुभव करना ही मेरे विचार में सर्वश्रेष्ठ साधन है ॥ १९ ॥"

उद्धव के प्रश्न के उत्तर में, भगवद्भक्ति के कारणों को समझाने में भगवान् ने जो उपदेश दिये थे वे श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध के १९श अध्याय में निम्नोक्त रूप से वर्णित हैं:—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"भक्तियोगः पुरैवोक्तः प्रीयमाणाय तेऽनघ ।
पुनश्च कथयिष्यामि मद्भक्तेः कारणं परम् ॥ १८ ॥
श्रद्धामृतकथायां मे शश्वन्मदनुकीर्त्तनम् ।
परिनिष्ठा च पूजायां स्तुतिभिः स्तवनं मम ॥
आदरः परिचर्य्यायां सर्वाङ्गैरभिवन्दनम् ।
मद्भक्तपूजाभ्यधिका सर्वभूतेषु मन्मतिः ॥ १९ ॥
मदर्थेष्वङ्गचेष्टा च वचसा मद्गुणेरणम् ।
मय्यर्पणञ्च मनसः सर्वकामविवर्जनम् ॥ २० ॥
मदर्थेऽर्थपरित्यागो भोगस्य च सुखस्य च ।
इष्टं दत्तं हुतं जप्तं मदर्थं मद्व्रतं तपः ॥ २१ ॥
एवं धर्म्मैर्मनुष्याणामुद्धवात्मनिवेदिनाम् ।
मयि संजायते भक्तिः कोऽन्योऽर्थोऽस्यावशिष्यते॥२२॥"

अस्यार्थः—"हे निष्पाप उद्धव ! मैं तुमसे भक्तियोग का वर्णन पूर्व ही कर चुका हूँ। पर अब तुम्हारे सन्तोष के लिए मैं भगवद्भक्ति का सर्वश्रेष्ठ कारण वर्णन करता हूँ ॥१८॥

मत्सम्बन्धी अमृतोपम कथाओं में श्रद्धा रखनी, सदैव मेरे गुणों का कीर्तन करना, मेरे पूजन में सम्यक् निष्ठा रखनी, नाना प्रकार की स्तुतियों से मेरा स्तवन करना, मेरी सेवा का आदर करना, सर्वाङ्गों द्वारा मुझको नमस्कार करना और मेरी और मेरे भक्तों की पूजा से भी बढ़कर **सर्वभूतों में मेरी सत्ता को देखना** ॥ १९॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मेरी सेवा करने के लिए ही समस्त शारीरिक कर्म्मों का करना, मेरे ही गुणों के वर्णन के लिए बोलना, मुझी में मन को लगाना और अन्य सब कामनाओं का परित्याग करना ॥ २० ॥

मेरे लिए धन, भोग और सुख का त्याग करना, मेरे लिए यज्ञ, दान, हवन, जाप और तपश्चरण करना ॥२१॥

हे उद्धव ! मुझमें आत्मनिवेदन कर जो इन सब धर्म्मों का पालन करता है, उसकी मुझ पर भक्ति उपजात होती है; तब और कुछ भी उसको प्राप्तव्य नहीं रह जाता ॥२२॥"

अस्मद्व्याख्यात वेदान्तदर्शन की भूमिका में भेदाभेद-सिद्धान्तानुगामी साधन की व्याख्या इस भाँति की गई है:— सर्वरूपी और अरूपी, सर्वरूपमय और सर्वरूपातीत, प्राकृतिक गुणातीत अथच सर्वजगन्नियन्ता तथा आश्रय ऐसे ब्रह्म की भक्ति द्वारा प्राप्ति की जाती है; भक्ति ही इस पूर्ण ब्रह्म-प्राप्ति की पूर्ण साधिका है (वेदान्तदर्शन के तृतीय अध्याय के द्वितीय पादस्थ २४संख्यक प्रभृति सूत्र द्रष्टव्य हैं)। अपनी एवं समग्र विश्व की ब्रह्मरूप में भावना भक्तिमार्ग का एक अङ्ग है। ज्ञान-मार्ग के साधक केवल अपनी ही ब्रह्मरूप में भावना करते हैं, एवं जगत् को अनात्म कहकर परिहार करते हैं। भक्तिमार्ग के साधकों के निकट अनात्म कहकर कुछ है ही नहीं; वे जैसे अपनी, ब्रह्म से अभिन्न रूप में, भावना करते हैं, तद्रूप परिदृश्य-मान जगत् की भी, ब्रह्म से अभिन्न रूप में, भावना करते हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवञ्च ब्रह्म को जीव और जगदतीत सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् अच्युत आनन्दमय कहकर भी चिन्तन करते हैं। इस भक्तिमार्ग की उपासना को केवल सगुण उपासना कहकर व्याख्यात करना ठीक नहीं। भक्तिमार्ग की उपासना त्रिविध अङ्गों से पूर्ण है; जगत् का ब्रह्मरूप में दर्शन इसका एक अङ्ग है; जीव की ब्रह्मरूप में भावना इसका द्वितीय अङ्ग है, एवं जीव और जगत् से अतीत, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वाश्रय तथा आनन्दमयरूप से ब्रह्म का ध्यान इसका तृतीय अङ्ग है। उपासना के प्रथम दो अङ्गों के द्वारा साधक का चित्त सर्वतोभाव से निर्मल होता है, तृतीयाङ्ग के द्वारा ब्रह्म-साक्षात्कार-लाभ होता है। भक्त के निकट ब्रह्म सगुण और निर्गुण दोनों ही है; जागतिक कोई भी वस्तु केवल गुणात्मक नहीं है; ब्रह्म से विच्छिन्न होकर गुण अवस्थिति कर नहीं सकता; कारण, गुण का स्वातन्त्र्य वेदान्त-शास्त्र में निषिद्ध है। सुतरां भक्त-साधक जिस किसी मूर्त्ति का दर्शन करता है, उसी को ब्रह्म कहकर तत्प्रति स्वभावतः प्रेमयुक्त होता है। इस प्रकार सर्वविध-द्वैतधारणा-विवर्जित एवं असूया-विवर्जित होने से चित्त निर्म्मल होता है; और परब्रह्म में सम्यक् निष्ठा का उदय होता है। यही परा भक्ति के नाम से शास्त्रों में उल्लिखित है; और इसी के द्वारा परब्रह्म-साक्षात्कार होता है। ब्रह्मसूत्र में भी भगवान् वेदव्यास ने इन्हीं त्रिविध उपासनाओं को मोक्षसाधन का उपाय कहकर व्याख्यात किया है। (वेदान्त-सूत्र के प्रथम अध्याय, प्रथम पाद, अन्तिम सूत्र

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवं तृतीय अध्याय, द्वितीय पाद, २४ सूत्र प्रभृति द्रष्टव्य हैं।) भक्ति की प्राथमिक अवस्था को साधन-भक्ति कहते हैं। इसके द्वारा चित्त का प्रसारण होने से, चित्त के अनन्तत्व-प्राप्त होने पर, "परा भक्ति" नामक भक्ति की अन्तिम अवस्था उपस्थित होती है। इस परा भक्ति के द्वारा ही परब्रह्म का साक्षात्कार होता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी इस परा भक्ति को ही ब्रह्म-साक्षात्कार का उपाय कहकर भगवान् वेदव्यास ने भगवदुक्ति-प्रसङ्ग में स्पष्ट रूप से वर्णन किया है; यथा:—

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥
१८श अ०, ५४ श्लोक।

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥
१८श अ०, ५५ श्लोक।

अस्यार्थः—मैं ब्रह्म से अभिन्न हूँ, इस प्रकार निश्चित बुद्धि से (ब्रह्मरूप में) अवस्थित प्रसन्नचित्त पुरुष किसी विषय में शोक नहीं करता, और कुछ भी आकांक्षा नहीं करता; सर्व-भूतों में उसकी ब्रह्मबुद्धि होने के कारण, वह सम्यक् समदर्शी होता है। ("अनात्म" कहकर उसके पक्ष में कुछ भी परिहार्य्य नहीं है।) ऐसी अवस्था को प्राप्त पुरुष ही मत्स-म्बन्धिनी परा भक्ति लाभ करता है। १८श अ०, ५४ श्लो०।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस परा भक्ति द्वारा भक्त मेरे यथार्थ स्वरूप को (परम विभु-स्वभाव, सर्वैश्वर्य्यसम्पन्न चिदानन्दात्मक रूप को) सर्व-तत्त्वों के सहित जानकर ही मुझमें प्रवेश करता है। १८श अ०, ५५ श्लो०।

इस सार्वजनीन ब्रह्मबुद्धि के अङ्गीभूतरूप से श्री निम्बार्क सम्प्रदाय के वैष्णव श्रीकृष्ण और श्री राधिकाजी की युगल मूर्त्ति की विशेष रूप से उपासना करते हैं। पहिले ही कहा गया है कि, जगत् के समस्त रूप ही ब्रह्म के विशेष-विशेष रूप हैं; और इन समस्त विशेष रूपों में चिच्छक्ति के प्रकाश के प्रभेद अनन्त प्रकार के हैं। इन प्रभेदों के प्रति लक्ष्य करके ही जीवसमूह को श्रेणीबद्ध करते हैं, एवं वे पारस्परिक सङ्ग और सहायता के अवलम्बन से ही अपनी अपनी शक्ति में उन्नति तथा अवनति प्राप्त किया करते हैं, यह सदैव प्रत्यक्ष प्रमाणसिद्ध है। जागतिक व्यापारों में सर्वत्र ब्रह्म-शक्ति त्रिविधभाव से प्रकाशित है:—(१) ज्ञानप्रधानात्मिका शक्ति, जिसको सत्त्वगुण कहते हैं। (२) कर्मप्रधानात्मिका शक्ति, जिसको रजोगुण कहते हैं। (३) दोनों का अव-रोधक-स्वभाव स्थितिशील तमोगुण है। सत्त्वगुण ही ब्रह्म की गुणातीत अवस्था की निकटतम शक्ति है। इसके भी स्वरूप के वर्णन करने में श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है:—

"तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात् प्रकाशकमनामयम्।
सुखसङ्गेन बध्नाति, ज्ञानसङ्गेन चानघ ॥ १४।६ ॥"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अतएव सत्त्व स्वरूपतः सुखात्मक (आनन्दात्मक) तथा ज्ञानात्मक है। सत्य है कि, ये ज्ञान और आनन्द गुण में गण्य हैं, सुतरां तन्निष्ठ पुरुष गुणातीत मुक्त नहीं हैं; एवञ्च ये आनन्द और ज्ञान तथा मुक्तावस्था के ज्ञान और आनन्द जो अमूर्त्त ब्रह्म के स्वरूपगत हैं, इन दोनों में अनेक प्रभेद हैं। परन्तु प्रकाशित जगत् में निर्मल सत्त्व ही ज्ञान और आनन्द का आदर्श-स्थानीय है। इस सत्त्वगुणाधिष्ठित पुरुष-रूप में भी ब्रह्म की कृष्ण और विष्णु संज्ञायें होती हैं। यह सत्त्वाधिष्ठित रूप द्विविध है:—(१) समग्र जगत् का समष्टिभाव से अधिष्ठातृ-रूप,—जिस रूप में उसका नाम अनन्तदेव है, (२) गोलोकाधिपति-रूप,—जो सर्वापेक्षा अधिक निर्मलसत्त्वगुणविशिष्ट कृष्ण (विष्णु)-रूप है। प्रत्येक विशेष विशेष रूप द्वारा ब्रह्म विशेष विशेष जागतिक कार्य सम्पादित करता है; उनमें उसका गोलोकाधिपति-कृष्ण-रूप जागतिक समस्त जीवों के हेतु अशेष कल्याणसाधक एवं मुक्तिप्रद है। वे कृष्ण ब्रह्म के अमूर्त्त और मूर्त्त रूपों के बीच में सेतुस्वरूप वर्तमान होकर साधारण जीवों के मोक्ष-प्राप्ति के लिए प्रधान हेतु हैं। विष्णु ही जो मोक्षदाता हैं, इस विषय में श्रुति प्रभृति सर्वशास्त्रों में प्रमाण दृष्ट होते हैं; यह सभी जानते हैं। इस विषय में केवल एक ही श्रीमद्भागवत का श्लोक इस स्थान पर उद्धृत किया जाता है, यथा:—

सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्गुणा-
स्तैर्युक्तः परः पुरुष एक इहास्य धत्ते।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्थित्यादये हरिविरञ्चिहरेति संज्ञा
श्रेयांसि तत्र खलु सत्त्वतनोर्नृणां स्युः ॥

अस्यार्थः—सत्त्व, रजः और तमः ये तीनों प्रकृति के गुण हैं। एक परमपुरुष ही जगत् के सृष्टि-स्थिति-लय-सम्बन्धी कार्य्यों को सम्पादित करने के निमित्त उन तीनों गुणों को धारण कर हरि, हर और विरञ्चि संज्ञाओं को प्राप्त होता है। उनमें से सत्त्वमय-तनु हरि ही मनुष्यों के श्रेयः(मोक्ष)साधन के हेतु होते हैं।

"तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः"

इत्यादि वैदिक मन्त्र भी यही प्रमाणित करते हैं।

शङ्करजी जैसे ज्ञानदाता गुरु कहकर सर्वत्र वर्णित हुए हैं, वैसे ही जीवों के दुःख के अत्यन्त निवृत्ति-रूप मोक्ष के लिए विष्णु ही मुक्तिदाता कहकर वर्णित हुए हैं। जो लोग केवल अव्यक्त अक्षरब्रह्म की उपासना करते हैं, वे भी उस साधना के फलस्वरूप अन्त में उन सगुण ब्रह्म विष्णु को प्राप्त होते हैं, यह श्रीमद्भगवद्गीता में स्पष्ट रूप से निम्नलिखित श्लोकों में श्री भगवान् ने वर्णित किया है, यथाः—

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्य्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यञ्च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥ १२।३ ॥
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥ १२।४ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अस्यार्थः—सर्वत्र समबुद्धि तथा सर्वभूतों के हितकार्यों में रत जो लोग इन्द्रियसमूह को वशीभूत कर अनिर्देश्य, अव्यक्त, सर्वत्र अचिन्त्य, अचल, ध्रुव, कूटस्थ अक्षर की सम्यक् रूप से उपासना करते हैं, वे हम ही को प्राप्त होते हैं।

इस स्थल पर जो "माम्" शब्द सगुण ब्रह्म कृष्ण का वाचक है इस विषय में, इन श्लोकों के पहले वर्णित १म और २य श्लोकों को पढ़ने से, किसी का भी सन्देह नहीं रह सकता। वे ही वास्तव में सेतु-स्वरूप होकर माया के पार जाने के इच्छुक सभी को उत्तीर्ण किया करते हैं। जो लोग साक्षात सम्बन्ध में उनकी उपासना करते हैं, उन सब मुमुक्षु जीवों को उन्होंने सर्वापेक्षा अधिकतम योगवित् कहकर वर्णित किया है, यथाः—

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः॥ १२।२॥

अस्यार्थः—मेरे सगुण-रूप में मन को एकाग्र कर सदा मुझमें युक्त होकर जो लोग उत्तम भक्ति के साथ मेरी उपासना करते हैं, मेरे मत में वे ही सर्वश्रेष्ठ योगवित् हैं।

ये श्रेष्ठतम योगवित् क्यों हैं यह निम्नलिखित श्लोकों में वर्णित किया गया है, यथाः—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥ १२।५॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥ १२-६ ॥
तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥ १२-७ ॥

अस्यार्थः—अव्यक्त ब्रह्म की उपासना में आसक्त पुरुषों को सिद्धि-प्राप्ति में अधिकतर क्लेश होता है; कारण, देहधारी जीवों के लिए अव्यक्त (विषय) में मन का लक्ष्य स्थापित करना अत्यन्त क्लेशजनक है ॥ १२–५ ॥

किन्तु जो लोग समस्त कर्मों को मुझमें अर्पण कर, मुझको एकमात्र आश्रय जान, अन्य बुद्धि के परित्यागपूर्वक, एकाग्र-चित्त होकर ध्यानावलम्बन द्वारा मेरी उपासना करते हैं, मुझमें निविष्टचित्त उन सब भक्तों का मैं मृत्युरूप संसार-सागर से अचिरकाल ही में उद्धार करता हूँ ॥ १२।६,७ ॥

सर्वत्र ब्रह्मबुद्धि स्थापित करना, शत्रु और मित्र दोनों को समभाव से देखना, साधक के लिए पहिले कठिन मालूम पड़ता है; यहाँ तक कि इसकी सम्भावना पर विश्वास करना ही बहु-तेरों के लिए कठिन है। जिन लोगों को ऐसा सन्देह उपस्थित होता है, उनकी विचार-शक्ति को उस तरफ आकृष्ट करने के लिए पूर्वोक्त गुरु-शिष्य-संवाद ग्रन्थ के ७८ से ८५ पृ० में वर्णित विषय के पठन से सहायता मिल सकती है। उसे इस स्थल पर उद्धृत कर प्रबन्ध के कलेवर की वृद्धि करना अनावश्यक है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परन्तु विचार द्वारा यह बोधगम्य होने पर भी, सर्वत्र ब्रह्मबुद्धि को स्थापित करना पहिले अत्यन्त कठिन है, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है। किस प्रकार के साधन के अवलम्बन से सर्वव्यापी सर्वेश्वर रूप में भगवान् की धारणा की जा सकती है, इस विषय में श्रीमद्भगवद्गीता में अर्जुन ने भगवान् से निम्नलिखित प्रश्न किया था:—

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव।
न हि ते भगवन् व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः॥ १०-१४॥

कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन्।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया॥ १०-१७॥

अस्यार्थः—हे केशव! तुमने मुझसे जो कुछ कहा वह सब सत्य है, ऐसा समझता हूँ। यह जो तुम्हारा प्रकाश-भाव है, इसको देवता अथवा दानव कोई भी नहीं जानते हैं।

हे योगिन्! सदा किस भाँति चिन्तन करने से मैं तुम्हें जान सकूँगा, किन किन प्रकारों से तुम मेरे द्वारा चिन्तनीय हो, इसका मुझे उपदेश करो।

इसके उत्तर में श्री भगवान् ने पहिले कहा कि, वे सभी भूतों के आत्मारूप में स्थित हैं। इसके पश्चात् अपनी सर्वश्रेष्ठ शक्ति तथा महत्त्व-प्रकाशक विभूतियों को वर्णित कर उन्होंने अन्त में कहा कि, जिस किसी स्थल पर विशेष महत्त्व तथा उज्ज्वल श्रीसम्पन्न भाव देखो उसी को मेरी शक्ति का

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रकाश जानो ("यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वम्" इत्यादि)। यह कहकर अन्त में उन्होंने कहा कि समस्त जगत् उनका अंशमात्र है। वे ही एकांश में जगद्रूपी होकर स्थित हैं।

वास्तव में किसी पुरुष के सम्बन्ध में महत्त्व की धारणा होने पर उसकी ओर स्वतः ही भक्ति उपजात होती है। इसी प्रकार सर्वदा महत्त्व के चिन्तन द्वारा भक्ति के उद्दीपित होने से सर्वत्र ब्रह्मभाव को स्थापित करना कुछ सहज होता है। इस कारण आर्यशास्त्रों में जगत् के विशेष कल्याणकारी जो सब रूप भगवान् के हैं, उनके ध्यान और उनकी उपासना की व्यवस्था की गई है। विशेष शक्ति-सम्पन्न और विशेष उपकारी की उपासना और ध्यान से जैसे साधक की भक्ति स्वभावतः उद्दीपित होती है, वैसे ही पुनः वे सब विभूति-सम्पन्न महात्मा, भक्ति के साथ कुछ भी पूजित होने से, कृपया साधक के साहाय्यकारी होते हैं और कल्याण-साधन करते हैं। विशिष्ट रूप में प्रकाशित ब्रह्म की समस्त मूर्त्तियों में जीवों के स्थितिसम्पादक कल्याणदायक, मुक्तिप्रद एवं सब से अधिक निर्मल सत्त्वगुणमय गोलोकाधिपति श्रीकृष्णमूर्त्ति सर्वापेक्षा जो प्रधान है यह पूर्व ही प्रमाणों के साथ वर्णित किया गया है; एवं जगत् जो ब्रह्म का ही अंश, अतएव सत्य है, इसका भी विस्तृत रूप से पुनःपुनः उल्लेख किया गया है। गोलोकाधिपति भगवान् श्रीकृष्ण मनुष्यलोक के कल्याण के लिए यदुकुल में आविर्भूत होकर अर्जुन को उपदेश देने के उपलक्ष में पूर्वोद्धृत गीता के द्वादश अध्याय में स्वयं बोले—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥ ५ ॥
तेषाम समुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥ ६ ॥

अतः निम्बार्कीय वैष्णव लोग जगत् को सत्य और ब्रह्म-मय मानकर ध्यान करते हैं, एवं विशेष रूप से श्रीकृष्ण की उपासना में प्रवृत्त होते हैं।

श्रीनिम्बार्क स्वामी ने स्वीय "वेदान्तकामधेनु" नामक संक्षिप्त ग्रन्थ में जगत् के ब्रह्मात्मक होने के विषय में नीचे के श्लोक द्वारा अपना सिद्धान्त ज्ञापित किया है:—

सर्वं हि विज्ञानमतो यथार्थकम्
श्रुतिस्मृतिभ्यो निखिलस्य वस्तुनः ।
ब्रह्मात्मकत्वादिति वेदविन्मतम्
त्रिरूपताऽपि श्रुतिसूत्रसाधिता ॥ ७ ॥

अस्यार्थः—दृश्यमान समस्त ही विज्ञान में वर्तमान हैं, अतः ये यथार्थ हैं। क्योंकि श्रुतियों और स्मृतियों में सर्वत्र यह अखिल विश्व ब्रह्मात्मक कहकर प्रमाणित हुआ है, यही वेदज्ञों का अभिमत है। और ब्रह्म की त्रिरूपता (प्रकृति, पुरुष और ईश्वररूपता) भी श्रुतियों ने सिद्ध की है ॥ ७ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भगवान् श्रीकृष्ण ही निम्बार्क सम्प्रदाय के वैष्णवों के विशेष रूप से उपास्य हैं, यह भी उक्त ग्रन्थ में श्रीनिम्बार्क स्वामी ने वर्णित किया है :—

नान्या गतिः कृष्णपदारविन्दात्
संदृश्यते ब्रह्मशिवादिवन्दितात् ।
भक्तेच्छयोपात्तसुचिन्त्यविग्रहा-
दचिन्त्यशक्तेरविचिन्त्यशासयात् ॥ ८ ॥

अस्यार्थः—भक्तों के कल्याणार्थ जिन्होंने सुचिन्त्य विग्रह रूप धारण किया, जिनकी महिमा अपार है, जिनकी शक्ति की सीमा नहीं है, उन अचिन्त्य जगत्-शासन-कर्त्ता श्रीकृष्ण के ब्रह्मशिवादि-वन्दित चरण-कमलों को छोड़कर, जीवों की और कोई गति नहीं देखी जाती ॥ ८ ॥

उनको प्राप्त करने के उपाय का वर्णन करने में श्रीनिम्बार्क स्वामी उक्त "वेदान्तकामधेनु" नामक ग्रन्थ में कहते हैं :—

कृपास्य दैन्यादियुजि प्रजायते
यया भवेत्प्रेमविशेषलक्षणा ।
भक्तिर्ह्यनन्याधिपतेर्महात्मनः
सा चोत्तमा साधनरूपिकाऽपरा ॥

अस्यार्थः—दैन्यादि-गुणयुक्त पुरुषों के प्रति इनकी (भगवान् श्रीकृष्ण की) कृपा उपजात होती है; इसी कृपा से उन सर्वेश्वर परमात्मा पर प्रेमविशेषरूप भक्ति उपजात होती है। यह

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भक्ति दो प्रकार की है:—एक साधनरूपिका अपरा भक्ति और दूसरी उत्तमा परा भक्ति।

पर भगवान् श्रीकृष्ण ही निम्बार्क-सम्प्रदाय के उपास्य होने पर भी, निम्बार्क वैष्णव लोग श्रीकृष्ण की सशक्तिक उपासना को ही अधिक फलप्रद मानते हैं। भगवान् की पुरुष-मूर्त्तियों में जैसे श्रीकृष्ण-मूर्त्ति प्रधान है, वैसे ही स्त्रीमूर्त्तियों में श्रीराधिका-मूर्त्ति भी प्रधाना है। श्रीराधिकाजी श्रीकृष्ण की सर्वप्रधाना शक्ति हैं। सशक्तिक भगवन्मूर्त्ति की उपासना से जितने शुभप्रद फल मिलते हैं, उनमें यह फल विशेष लाभकारी है कि, उस उपासना से शीघ्र ही साधक की काम-प्रवृत्ति की निवृत्ति होती है। भगवान् के साथ संयुक्त भाव से स्त्री-मूर्त्ति की उपासना भक्तिपूर्वक करने से, स्त्री-मूर्त्ति पर साधक का कामभाव तिरोहित होता है, और स्त्री-पुरुष के मैथुनिक भाव को भगवल्लीला-रूप से दर्शन करने की शिक्षा प्राप्त होने से, उस विषय में बुद्धि की निर्मलता उपजात हो जाती है। इसलिए उपास्य के स्वरूप का वर्णन करने में श्रीनिम्बार्क स्वामी "वेदान्तकामधेनु" नामक ग्रन्थ में कहते हैं:—

स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोषम्
अशेषकल्याणगुणैकराशिम्।
व्यूहाङ्गिनं ब्रह्म परं वरेण्यम्
ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम् ॥ ४ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अङ्गे तु वामे वृषभानुजां मुदा
विराजमानामनुरूपसौभगाम् ।
सखीसहस्रैः परिसेवितां सदा
स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम् ॥ ५ ॥

अस्यार्थः—जो स्वभावतः समस्त दोषों से रहित हैं, जिनमें सर्वप्रकार के कल्याण-प्रद गुण-समूह विद्यमान हैं, (महा-विराटादि) चतुर्विध व्यूह जिनके अङ्ग* हैं, जिनके नेत्र कमल-सदृश हैं, जो सबके वरेण्य परब्रह्म हैं, उन श्रीकृष्णरूप हरि का हम ध्यान करते हैं ॥ ४ ॥

इनके वामाङ्ग में प्रसन्नवदना वृषभानु-सुता विराजमाना हैं, जो श्रीकृष्ण के अनुरूप सौन्दर्यादि-गुण-विशिष्ट हैं और

---

* यह चतुर्विध व्यूह इस प्रकार के हैं :—

(१) वासुदेव, अर्थात् जगदतीत पुरुषोत्तम ईश्वररूप ।

(२) सङ्कर्षण—समग्र विश्वव्यापी सूक्ष्मतम प्रकृति एवं उसके अङ्गीभूत सूक्ष्म तथा स्थूल समग्र जगद्रूप देहयुक्त पुरुष ।

(३) प्रद्युम्न—विश्व के उच्चतम सर्वव्यापी सत्त्वगुणाधिष्ठित पुरुष, स्थूल तथा सूक्ष्म देह-विशिष्ट समस्त जीव जिसके अङ्गीभूत हैं ।

(४) अनिरुद्ध—जो विश्वरूपी अहंतत्त्व के अधिष्ठाता होकर अपने अङ्गीभूत स्थूल जगत् की परिचालना करते हैं एवं समस्त व्यष्टि-भावापन्न स्थूल देहधारी जीव जिनके अङ्गीभूत हैं ।

अतएव श्लोक में जो "व्यूहाङ्गिनम्" पद उक्त हुआ है उसका अर्थः—स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण रूप से अवस्थित यह अनन्त ब्रह्माण्ड जिनकी मूर्त्ति है और जो उसको अतिक्रम करके चिदानन्दरूप में अवस्थित हैं ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जिनकी सेवा में सहस्र सखियाँ सदा नियुक्त रहती हैं, ऐसी सर्वाभीष्ट-प्रदायिनी देवी का हम ध्यान करते हैं ॥ ५ ॥

यह प्रबन्ध और विस्तृत न करके इसी स्थल पर समाप्त किया जाता है। श्री निम्बार्क ऋषि द्वारा उपदिष्ट, सार्वजनीन, सर्वप्रकार विरोध-रहित तथा सर्वत्र प्रीति-प्रवर्त्तक इस धर्म्म के प्रचारित होने से, एतद्देशीय लोगों में एवं पृथ्वी के सर्वजातीय मनुष्यों में विरोध और अशान्ति दूरीभूत होंगे, एवं सर्वत्र सुख और शान्ति की स्थापना का मार्ग विमुक्त होगा, तथा सब लोग अच्युत-आनन्द प्राप्त कर सकेंगे—यही हम लोगों की धारणा है; और इसी धारणा के द्वारा परिचालित होकर यह आश्रम और मन्दिर स्थापित किये गये हैं। अलमतिविस्तरेण।

ॐशान्तिः, ॐशान्तिः, ॐशान्तिः।

LIBRARY
No. ...
Sri Sri ... ayee Ashram
BANARAS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

C0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varana

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

C0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varana

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi